नई दिल्ली
रविवार, 19 अप्रैल, 2026, मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-8 अंक-26 पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-05/1425/2025-27
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2025-27
Magazine Post Reg. No. DL(DS)-31/MP/25-26-27

संडे नवजीवन

Freedom is in Peril, Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

जमीन हड़पो अभियान भाजपा जहां भी सत्ता में है, लोगों को बेदखल कर पूंजीपतियों को दे रही जमीन 4

ट्रंप अपने ही देश में पड़ रहे मुश्किल में 6

ईरान युद्ध की छाया 8

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

यह छलावा संसद का स्वरूप बदलने का था

महिला आरक्षण के नाम पर यह चुनावी लोकतंत्र का देश-काल-पात्र बदलने के बड़े खेल का हिस्सा था जिसे विपक्ष ने विफल कर दिया

योगेन्द्र यादव

कई दिनों के सस्पेंस के बाद पर्दा उठा, तो कई चीजें साफ हो गईं। कई दिनों से हमें बताया जा रहा था कि महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कुछ क्रांतिकारी कदम उठाया जाने वाला है। शुभ काम में कहीं देरी न हो जाए, इसके लिए चार राज्यों के चुनाव के बीचों बीच संसद का विशेष सत्र बुलाया गया। आलोचकों का मानना था कि दाल में कुछ काला है। मामला "कहीं पे निगाहें कहीं पे निशाना" वाला था। और वही निकला। नारी वंदन के मुखौटे के पीछे दरअसल यह संसद का स्वरूप बदलने का खेल था ताकि भाजपा को अगला चुनाव जीतने में दिक्कत न हो। यह चुनावी लोकतंत्र का देश-काल-पात्र बदलने के बड़े खेल का एक हिस्सा था।

आखिर, संसद का विशेष सत्र शुरू होने से मात्र 36 घंटे पहले इसमें पेश होने वाले संविधान (131 वां संशोधन) विधेयक की प्रति सार्वजनिक की गई। सवाल यह है कि अगर यह विधेयक महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कोई क्रांतिकारी कदम उठाने वाला था, तो इसे जनता और महिलाओं से इतना छुपाकर रखने की क्या जरूरत थी? जाहिर है कि इस संविधान संशोधन के लिए संसद में दो-तिहाई बहुमत चाहिए, जो सरकार के पास नहीं है। इसलिए विपक्ष के समर्थन के बिना यह पारित नहीं हो सकता था। खुद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने विपक्ष से इसका समर्थन करने का आग्रह किया। तो फिर इसकी प्रति विपक्ष के नेताओं को भी समय से क्यों नहीं दी गई? विपक्ष ने बार-बार आग्रह किया कि सरकार इस मुद्दे पर सर्वदलीय बैठक बुलाकर आम सहमति बनाए। इसे क्यों नहीं माना गया? और ऐसी क्या आफत थी कि संसद का सत्र बंगाल और तमिलनाडु के चुनाव प्रचार के बीच चुनाव से एक सप्ताह पहले बुलाया जाए?

विधेयक की प्रति सार्वजनिक होने के बाद ही यह राज कुछ हद तक खुल गया। जैसी कि आशंका थी, यह प्रस्तावित संविधान संशोधन महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के बारे में नहीं बल्कि संसद का पुनर्गठन करने के बारे में था। महिला आरक्षण के बारे में सिर्फ इतना था कि संविधान के अनुच्छेद 334 (क) में संशोधन कर महिलाओं के लिए सीट आरक्षित करने के लिए नई जनगणना के आंकड़ों का इंतजार करने की जरूरत नहीं रहेगी। तब प्रस्तावित किए गए संशोधन के अनुसार, 2029 के लोकसभा चुनाव में महिलाओं को आरक्षण दिया जा सकता था। मगर इसे कोई क्रांतिकारी कदम मानने से पहले याद कीजिए कि महिला आरक्षण में जनगणना और परिसीमन का फच्चर आया कहां से था। सच यह है कि 2023 में संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण देने वाला संशोधन लाते वक्त मोदी सरकार ने बिना वजह यह शर्त डाल दी थी कि यह तभी लागू होगा जब नई जनगणना के आंकड़ों के आधार पर नया परिसीमन होगा। मतलब तब उसने खुद ही महिला आरक्षण को 10 साल के लिए टाल दिया था। विपक्ष के नेता मल्लिकार्जुन खड़गे ने तब ही मांग की थी कि इस शर्त को हटाया जाए और महिला आरक्षण को 2024 चुनाव से लागू किया जाए। सरकार ने इस मांग को खारिज कर दिया था। अब वही सरकार उसी मांग को पांच साल बाद लागू कर क्रांतिकारी परिवर्तन का श्रेय लेना चाहती थी।

संविधान संशोधन का यह विधेयक मुख्यतः लोकसभा और विधानसभाओं के पुनर्गठन के बारे में था। पहली नजर में यह प्रस्ताव लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या की सीमा वर्तमान 547 (वास्तविक संख्या 543 है) से बढ़ाकर 815 करने का था। इस विस्तार के पक्ष में मजबूत तर्क हो सकते हैं, चूंकि लोकसभा क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या बहुत बढ़ गई है। सीटों की संख्या डेढ़ गुना बढ़ाने से हर क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या घटेगी। यह लोकतंत्र के लिए अच्छा है। लेकिन असली मुद्दा यह नहीं है। इस विधेयक का सबसे बड़ा और खतरनाक बदलाव यह था कि पिछले पचास साल से लोकसभा की सीटों में राज्यों के हिस्से में फेरबदल पर लगी रोक हटा ली जाती। फिलहाल संविधान के अनुच्छेद 82 में प्रावधान है कि राज्यों को 1971 की जनगणना के अनुपात में सीटें मिलेंगी। इस रोक की मियाद 2026 में खत्म होती है। पिछले कई महीने से प्रधानमंत्री और भाजपा के तमाम नेता बार-बार कह रहे थे कि लोकसभा की कुल संख्या में बढ़ोतरी होगी, लेकिन राज्यों के अनुपात को जस का तस रखा जाएगा। यानी अगर लोकसभा की कुल संख्या डेढ़ गुना होगी, तो उत्तर प्रदेश की सीटें 80 से बढ़कर 140 हो जाएगी, साथ में केरल की सीटें 20 से बढ़कर 30 हो जाएंगी। गैर हिन्दी भाषी प्रदेश चिंता न करें, ऐसा आश्वासन दिया गया।

लेकिन संविधान संशोधन का मसौदा इस वादे की अनदेखी करता था। इस संशोधन में प्रस्ताव था कि अनुच्छेद 55, 81, 82, 170 और 332 में संशोधन कर 1971 की जनगणना वाला प्रावधान हटा दिया जाए। लेकिन वर्तमान अनुपात को बनाए रखने का कोई जिक्र नहीं था। ऐसा होते ही अनुच्छेद 82 के अनुसार जनसंख्या के अनुरूप सीटों का बंटवारा करना अनिवार्य हो जाता। अगर नया परिसीमन 2011 के आंकड़ों के अनुसार होता और लोकसभा की संख्या डेढ़ गुना हो जाती, तो केरला की सीटें 20 से बढ़कर सिर्फ 23 होतीं, जबकि उत्तर प्रदेश की सीटें 80 से बढ़कर 132 हो जातीं। आनुपातिक रूप से केरला, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना, ओडिशा, बंगाल और पंजाब को घाटा होता, जबकि हिन्दी भाषी प्रदेशों को फायदा। इससे हिन्दी और गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों का नाजुक संघीय संतुलन बिगड़ जाता। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम के स्टालिन ने इसके खिलाफ जो चेतावनी दी, उस पर गौर न करना राष्ट्रीय एकता के लिए घातक होता।

यही नहीं, अगर यह संशोधन पारित हो जाता, तो लोकसभा में राज्यवार सीटें बांटने का प्रावधान संविधान की बजाय संसद के बनाए कानून द्वारा तय होता। मतलब यह बंटवारा किस जनगणना के आधार पर हो, यह फैसला करते वक्त सरकार को विपक्ष की सहमति नहीं चाहिए होती, क्योंकि आगे से इसके लिए संविधान संशोधन की जरूरत नहीं होती। यह फैसला तब परिसीमन आयोग करता। गौरतलब है कि सरकार इस संविधान संशोधन के साथ एक परिसीमन कानून का विधेयक भी लेकर आई थी। इसके अनुसार, नया परिसीमन 2011 की जनगणना के अनुरूप होता। लेकिन सरकार जब चाहे संसद में सामान्य बहुमत से इसे बदल सकती थी, चाहे तो 2027 के परिसीमन के मुताबिक कर सकती थी।

सरकार जानती थी कि ऐसा संशोधन संसद में दो-तिहाई बहुमत नहीं पा सकता। सवाल यह है कि यह जानते हुए भी ऐसा विभाजनकारी प्रस्ताव लाने के पीछे सरकार की क्या मंशा थी? ■

कृपया पेज 2 भी देखें

फोटो: विपिन

महिला आरक्षण बिल के मुद्दे पर पत्रकारों से बातचीत करते इंडिया गठबंधन के नेता

सरकार जानती थी कि ऐसा संशोधन संसद में दो-तिहाई बहुमत नहीं पा सकता। सवाल यह है कि यह जानते हुए ऐसा विभाजनकारी प्रस्ताव लाने के पीछे सरकार की क्या मंशा थी?

आखिर क्यों जल उठे नोएडा और मानेसर

एनसीआर के औद्योगिक इलाके में मजदूरों के ऐसे आंदोलन भारत की आर्थिक सेहत को आईना दिखाते हैं

नोएडा में प्रदर्शनकारी श्रमिकों पर लाठियां बरसाती पुलिस

गुरदीप सिंह सप्पल

जब 13-14 अप्रैल 2026 को नोएडा के औद्योगिक सेक्टरों में फैक्ट्री मजदूर विरोध प्रदर्शन कर रहे थे, प्राइम टाइम टीवी एंकर एक मनगढ़ंत साजिशी थ्योरी पर काम करने में जुटे थेः यह आग कौन भड़का रहा था? क्या कोई विदेशी हाथ? रात 9 बजे का यह ड्रामा अब किसी के लिए नया नहीं रहाः टीवी की स्क्रीन बंटी हुई थीं, एंकर गला फाड़-फाड़ कर चीख-चिल्ला रहे थे और साजिश का एक संभावित उम्मीदवार भी मौजूद ही था- पाकिस्तान। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने 'राज्य के विकास को अस्थिर करने की साजिश रचने वाले असामाजिक तत्वों' को गंभीर चेतावनी भी दे डाली।

अगर आप पहले से नहीं जानते हैं, तो टेलीविजन पर होने वाली बहसों से तो आपको यह सच कभी पता नहीं चलने वाला कि पिछले लगभग दस सालों में, जहां एक तरफ मजदूरी लगभग स्थिर रही है, वहीं किराया दोगुना हो चुका है और महंगाई आसमान पर है।

कॉरपोरेट मुनाफा 15 साल के सबसे ऊंचे स्तर पर है, जबकि फैक्ट्री के गेट के बाहर खड़े मजदूर की क्रय क्षमता उसी अनुपात में सबसे निचले स्तर पर है। जो लोग इस बात को समझते हैं, उनके लिए यह 'मोदीनॉमिक्स' का एक स्वाभाविक नतीजा है- जिसे ऊपर वालों के लिए बनाया गया है, और जिसकी कीमत चुकाने के लिए नीचे वाले अभिशप्त हैं।

मजदूरी के साथ असल में हुआ क्या?

पिछले दो दशकों में भारत में मजदूरी की कहानी (देखें टेबलः 'मजदूरी और कॉरपोरेट मुनाफा' और 'असली मजदूरी में बढ़ोतरी') बहुत कुछ बताती है। यूपीए के कार्यकाल (2004-2014) में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में अनौपचारिक क्षेत्र में असल मजदूरी हर साल 5 से 7 प्रतिशत की दर से बढ़ी। आजाद भारत में यह मजदूरी में सबसे तेज और लगातार होने वाली बढ़ोतरी थी। वजह थी- वास्तविक आर्थिक विस्तार, नरेगा के तहत तय न्यूनतम मजदूरी (जिसने अनौपचारिक क्षेत्र में मजदूरी बढ़ाने पर जोर दिया), खेती के उत्पादों के बढ़ते समर्थन मूल्य और आईटी क्षेत्र में प्रतिभा के लिए प्रतिस्पर्धा।

फिर आया साल 2014, और समय मानो थम-सा गया।

2014 के बाद से जहां आईटी क्षेत्र का मुनाफा दस गुना बढ़ा है, शुरुआती स्तर के वेतन जस का तस बने हुए हैं। कस्टमर केयर में काम करने वाला व्यक्ति 2014 में 15 से 25 हजार रुपये तक कमाता था, अब उससे भी कम कमा रहा है

मजदूरी और कॉरपोरेट मुनाफा

	2004	2014	2026
अकुशल फैक्ट्री कर्मचारी, नोएडा	₹3,500–5,000 प्रति माह	₹8,000–10,000 प्रति माह	₹11,000–13,000 प्रति माह
आईटी फ्रेशर (टीसीएस/ इन्फोसिस/ विप्रो)	₹8,000–10,000 प्रति माह	₹25,000–28,000 प्रति माह	₹25,000–28,000 प्रति माह
कस्टमर केयर /बीपीओ	₹3,000–4,500 प्रति माह	₹15,000–25,000 प्रति माह	₹10,000–28,000 प्रति माह
इंजीनियरिंग फ्रेशर (औसत बीटेक)	₹12,000–15,000 प्रति माह	₹20,000–25,000 प्रति माह	₹18,000–25,000 प्रति माह.
1बीएचके का किराया, नोएडा औद्योगिक क्षेत्र	₹2,500–3,500 प्रति माह	₹4,000–6,500 प्रति माह	₹8,000–14,000 प्रति माह
टीसीएस + इन्फोसिस संयुक्त लाभ	आधार समय	~4–5x of 2004	~10–12x of 2004

बात अपने आप में चौंकाने वाली है कि 2014 के बाद से जहां आईटी क्षेत्र का मुनाफा दस गुना बढ़ा है, शुरुआती स्तर के वेतन जस का तस बने हुए हैं। कस्टमर केयर में काम करने वाला व्यक्ति 2014 में 15 से 25 हजार रुपये तक कमाता था, अब उससे भी कम कमा रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह क्षेत्र अब छोटे-छोटे, बिना किसी नियम-कानून वाले 'गिग' (अस्थायी) कामों में बंट गया है, जहां मजदूरी की कोई न्यूनतम सीमा तय नहीं है। और तो और, फैक्ट्रियों में काम करने वाले अकुशल मजदूरों की मजदूरी में पिछले 12 सालों में महज 3 हजार रुपये की बढ़ोतरी हुई है! इस बीच, नोएडा में एक कमरे का किराया 2014 के 4 से 6 हजार रुपये से बढ़कर अब 8 से 14 हजार रुपये तक पहुंच चुका है। महंगाई ने मजदूर की कमाई को तो पीछे छोड़ दिया, लेकिन मकान मालिक की कमाई पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। यही वह आर्थिक समझौता है जिसे मोदी सरकार ने चुपके से लागू कर दिया है, और यही वजह है कि पिछले हफ्ते नोएडा की सड़कों पर जबरदस्त विरोध-प्रदर्शन देखने को मिले।

शेष पेज 2 पर ▸

कृपया पेज 3 भी देखें

महिला आरक्षण के लिबास में बड़ा षड्यंत्र

हरजिंदर

यह बात शायद लंबे समय तक पहेली रहे कि जानते-बूझते हुए भी कि महिला आरक्षण के लबादे में जो परिसीमन विधेयक पेश किया गया, वह संसद में गिर जाना तकरीबन तय था, फिर भी सरकार ने इसके लिए इतना बड़ा आयोजन क्यों किया।

पिछले एक सप्ताह में देश भर में जो हुआ, उसे हम भूल नहीं सकते। दक्षिण भारत, खासकर तमिलनाडु में जो हुआ और जिस तरह से लोग सड़कों पर निकल आए, जिस तरह से देश के विभिन्न हिस्सों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास बढ़ता दिखाई दिया, वह बताता है कि संसद में पेश परिसीमन विधेयक अगर वास्तव में पास हो जाता तो कितने बड़े खतरे खड़े हो सकते थे। इसने यह भी बताया कि भाजपा राजनीतिक फायदों के लिए किस हद तक जा सकती है, बिना किसी भी चीज की परवाह किए।

गुरुवार, 16 अप्रैल को तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन ने प्रस्तावित परिसीमन विधेयक की एक प्रति जलाकर विरोध दर्ज किया और काला झंडा फहराकर राज्यव्यापी विरोध का संकेत दिया। उन्होंने इसे "काला कानून" बताते हुए कहा कि यह तमिलों को "अपने ही देश में शरणार्थी" बना देगा।

वह अकेले नहीं हैं। दक्षिणी राज्य इस मुद्दे पर एकजुट होकर विरोध कर रहे हैं, और यह चिंता अब उत्तर भारत तक फैल रही है। शिरोमणि अकाली दल के नेता सुखबीर सिंह बादल ने भी इसे "बेहद भेदभावपूर्ण" बताया।

सबसे पहले कांग्रेस नेता सोनिया गांधी ने सार्वजनिक रूप से सरकार के असली एजेंडे पर सवाल उठाया। एक तीखे लेख (द हिन्दू, 16 अप्रैल 2026) में उन्होंने लिखा कि 'परिसीमन, न कि महिलाओं का आरक्षण, असली मुद्दा है। यह योजना बेहद खतरनाक है जो स्वयं संविधान पर हमला है।' इस हस्तक्षेप ने राष्ट्रीय बहस को तथाकथित महिला न्याय से हटाकर लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के मूल प्रश्न पर ला खड़ा किया।

शुक्रवार, 17 अप्रैल को संसद ने इस विधेयक पर मतदान किया। परिणाम वही रहा जो योगेन्द्र यादव (देखें पृष्ठ 1) ने कहा है- सरकार को पहले से ही पता था कि यह विधेयक दो-तिहाई बहुमत से पारित होना अत्यंत कठिन है, तो फिर पूरा खेल क्या है? लोग और राजनीतिक दल ऐसी सरकार पर कैसे भरोसा करें, जो कहती कुछ है और करती कुछ और है?

पहली नजर में 2029 के आम चुनावों से पहले महिलाओं के आरक्षण को लागू करने की सरकार की पहल भले ही देर से की गई, लेकिन स्वागतयोग्य लगी। संसद का विशेष सत्र बुलाया गया, फौरी जरूरत का हवाला दिया गया और महिला अधिकार की कथा गढ़ी गई। जैसे-जैसे इसके बारीक प्रावधानों पर संसद में चर्चा शुरू हुई, साफ होता गया कि असली कहानी कुछ और है।

इसे तरक्कीपसंद सुधार के रूप में पेश किया गया, जो जल्द ही चालाकी, संविधान के साथ खिलवाड़ और विघटनकारी प्रयास के रूप में देखा जाने लगा।

विधेयक क्या कहता है, इससे बड़ी बात यह हो गई कि वह क्या नहीं कहता।

पिछली बार परिसीमन के विधेयक की धारा 8 में यह स्पष्ट प्रावधान था कि निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाएं 2001 की जनगणना के आधार पर पुनर्निर्धारित की जाएंगी। साथ ही, इसने संघीय संतुलन की रक्षा करते हुए यह भी सुनिश्चित किया था कि लोकसभा में प्रत्येक राज्य को आवंटित सीटों की कुल संख्या 1971 की जनगणना के आधार पर स्थिर रहेगी। यह सिर्फ तकनीकी धारा नहीं थी। भारत की संघीय व्यवस्था का राजनीतिक और नैतिक आधार था। सोच थी कि जिन राज्यों ने जनसंख्या नियंत्रण नीतियों को सफलतापूर्वक लागू किया, उन्हें कम प्रतिनिधित्व देकर दंडित नहीं किया जाएगा।

इस बार यह प्रावधान अनुपस्थित था। प्रधानमंत्री, गृह मंत्री और अन्य केन्द्रीय मंत्रियों ने वादा करने और गारंटी देने की बातें कहीं। उन्होंने कहा कि राज्यों के बीच संतुलन, सीटों की संख्या और उनका अनुपात जस का तस रहेगा। प्रधानमंत्री ने समझाया कि कोई भी राज्य अपनी सीटें नहीं खोएगा। लेकिन विधेयक में इसका कोई उल्लेख नहीं था।

इस चूक को संसद के भीतर और बाहर नजरअंदाज नहीं किया गया। तमिलनाडु और तेलंगाना में लोग जिस तरह आंदोलित हुए, उससे इसे समझा जा सकता है।

कानूनी नजरिया कहता है कि जो कानून में नहीं लिखा होता, वह अक्सर अधिक महत्वपूर्ण होता है। यहीं से मनमानी और मनचाही व्याख्याओं का रास्ता तैयार होता है। मौखिक आश्वासन, चाहे कितने ही दृढ़ क्यों न हों, कानून की शक्ति नहीं रखते। वे न तो भविष्य की सरकारों को बाध्य कर सकते हैं, न ही उन्हें लागू किया जा सकता है।

यही वह बिंदु है जहां विपक्ष की आलोचना को बल मिलता है।

कई नेताओं का तर्क है कि यह कुछ और नहीं, बस महिला आरक्षण की खाल ओढ़े परिसीमन है। यह आरोप केवल भाषणबाजी नहीं है, विधेयक के स्वरूप का विश्लेषण इसी नतीजे की ओर ले जाता है।

कांग्रेस नेता प्रियंका गांधी ने सीधा सवाल उठाया- इतनी देरी क्यों, और इतनी अपारदर्शिता क्यों? उन्होंने यह भी कहा कि सरकार पिछड़ों के प्रतिनिधित्व के मुद्दे को "तकनीकी मामला" कहकर टाल रही है।

आलोचना केवल मंशा तक सीमित नहीं है, यह विधेयक के मसौदे तक भी जाती है।

चंडीगढ़ से कांग्रेस सांसद मनीष तिवारी ने कहा कि

संसद में महिला आरक्षण बिल पर सरकार की छिपी मंशा को उजागर करते नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी

इसका खाका बहुत खराब तरीके से बनाया गया है। उन्होंने उदाहरण दिया कि अगर संसद की तरह ही विधानसभाओं में भी 50 प्रतिशत सीटें बढ़ाई जाती हैं तो उत्तर प्रदेश विधानसभा में सीटों की संख्या 500 से ज्यादा हो जाएगी। संविधान का अनुच्छेद 170 कहता है कि किसी भी विधानसभा में सीटों की संख्या 60 से कम और 500 से ज्यादा नहीं हो सकती। सरकार ने अनुच्छेद 170 में संशोधन का कोई प्रस्ताव नहीं रखा है।

वैसे, विधेयक में 50 प्रतिशत सीटें बढ़ाने का कोई प्रावधान नहीं था। यह बात भी सिर्फ मौखिक रूप से सरकार के कुछ मंत्रियों और भाजपा के कुछ सांसदों ने ही कही।

इससे एक कानूनी विरोधाभास पैदा होता है- या तो प्रस्तावित विस्तार अवास्तविक था, या फिर विधेयक अधूरा था। दोनों ही स्थितियों में, स्पष्टता की कमी विधायी तैयारी और संवैधानिक अनुपालन को लेकर गंभीर सवाल खड़े करती है।

इन तकनीकी पहलुओं से परे बड़ा और अधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है- भारत के संघीय संतुलन को बदलने की कोशिश।

दशकों तक राजनीतिक आम सहमति रही कि परिसीमन, जब भी किया जाएगा, राज्यों के बीच संतुलन को नहीं बिगाड़ना चाहिए। यह समझ एक विविधता वाले देश को बनाए रखने में महत्वपूर्ण थी, जहां विभिन्न क्षेत्रों में जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियां अलग-अलग हैं।

अब वह सहमति टूटती हुई दिख रही है।

विशेष रूप से दक्षिणी राज्यों ने गहरी चिंता व्यक्त की है। उनकी चिंता सिर्फ सैद्धांतिक नहीं है। यह इस आशंका में निहित है कि जनसंख्या-आधारित पुनर्वितरण उनके राष्ट्रीय निर्णय-प्रक्रिया में आवाज को कम कर देगा, जबकि उन्होंने शासन और सामाजिक सूचकांकों में अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन किया है।

यह चिंता ओडिशा, हिमाचल प्रदेश और पंजाब जैसे राज्यों में भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है, जिन्हें भी प्रतिनिधित्व में कमी का सामना करना पड़ सकता है। परिसीमन सीमाओं के तकनीकी पुनर्निर्धारण का मामला नहीं रह गया है। यह प्रतिनिधित्व, न्यायसंगतता और संघवाद के अर्थ को लेकर राजनीतिक संघर्ष का केन्द्र बन गया है।

इन चिंताओं को और गहरा बनाती है पूरी प्रक्रिया की अपारदर्शिता। परिसीमन आयोग के पास व्यापक अधिकार हैं, और उसके फैसले न्यायिक समीक्षा से परे होते हैं। सीटों के आवंटन के लिए अपनाई जाने वाली पद्धति काफी हद तक सार्वजनिक नहीं होती, और उसकी आंतरिक चर्चाएं भी आम जनता के लिए उपलब्ध नहीं होतीं। लोकतंत्र में ऐसी अपारदर्शिता चिंताजनक है।

जब ऐसे फैसले, जो प्रत्येक नागरिक के वोट के वजन को निर्धारित करते हैं, बिना पारदर्शिता के लिए जाते हैं, तो जवाबदेही धुंधली हो जाती है। स्पष्ट वैधानिक दिशानिर्देशों की अनुपस्थिति इस जोखिम को और बढ़ा देती है।

इसलिए संसद में हुई बहस ने उस बात को उजागर कर दिया है, जिसे सुधार की भाषा के पीछे पहले ही छिपा दिया गया था कि परिसीमन केवल महिलाओं के प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं है- यह सत्ता के पुनर्वितरण का मामला है। सत्ता एक बार हाथ से निकल जाने के बाद, शायद ही कभी बिना संघर्ष के वापस मिलती है।

यदि सरकार वास्तव में संघीय संतुलन बनाए रखते हुए महिलाओं के प्रति न्याय के लिए प्रतिबद्ध है, तो कानून में स्पष्ट प्रावधान शामिल किए जाने चाहिए थे, सीटों के विस्तार के ढांचे को स्पष्ट करने के अलावा संवैधानिक विसंगतियों को दूर करना चाहिए था।

इससे कम कुछ भी, लंबे समय से अटके पड़े इस बदलाव को अविश्वास के दायरे में डाल सकता है। सवाल यह नहीं है कि परिसीमन होना चाहिए या नहीं। सवाल यह है कि क्या यह इस तरह किया जाएगा कि संघ मजबूत हो, या चुपचाप उसकी नींव को हिला दे। ■

आखिर क्यों जल उठे नोएडा...

पेज एक का शेष

लेबर ब्यूरो और एनएसएसओ के आंकड़ों के आधार पर अर्थशास्त्री ज़्यां द्रेज़ और अरिंदम दास 2014 के बाद से वास्तविक मजदूरी में वृद्धि को लगभग पूरी तरह से ठप पड़ जाने के रूप में दर्ज करते हैं।

वास्तविक वेतन वृद्धि

	यूपीए काल (2004–2014)	एनडीए काल (2014–2024)
कृषि श्रमिकों की मजदूरी में वास्तविक वृद्धि	+6.8% सालाना	–1.3% सालाना
अनौपचारिक क्षेत्र में वास्तविक वेतन वृद्धि	5–6% सालाना	~0%
संचयी वास्तविक वेतन वृद्धि	~90% (सांकेतिक)	~5–8% (सांकेतिक, मुद्रास्फीति से नीचे)

ये सारे निष्कर्ष सरकारी आंकड़ों, लेबर ब्यूरो की 'वेज रेट्स इन रूरल इंडिया' (डब्ल्यूआरआरआई) शृंखला और समय-समय पर होने वाले राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षणों से लिए गए हैं। इनसे स्वतः पुष्टि हो जाती है कि पिछले दस वर्षों में, वास्तविक मजदूरी की वार्षिक वृद्धि दर लगभग शून्य रही है। कृषि मजदूरों के लिए तो वास्तविक रूप से गिरावट आई है।

जब शिक्षा और गरीब बनाने लगे

शिक्षा को हमेशा गरीबी से बाहर निकलने की एक भरोसेमंद सीढ़ी एक जरिया माना गया है। लेकिन आजाद भारत में पहली बार है कि आबादी के एक बढ़ते हिस्से के लिए शिक्षा में निवेश पर मिलने वाला लाभ (रिटर्न) नकारात्मक हो गया है। कोई भी परिवार जो अपने बच्चे को किसी प्राइवेट इंजीनियरिंग कॉलेज में भेजने के लिए जमीन गिरवी रखता है, रिश्तेदारों से उधार लेता है, या 15 लाख रुपये का एजुकेशन लोन लेता है, वह अब सामाजिक-आर्थिक तरक्की में निवेश नहीं कर रहा है। मान लिया जाए कि ग्रेजुएशन के बाद नौकरी मिल जाएगी, तब भी शुरुआती वेतन 18 से 22 हजार रुपये प्रति महीना होगा, और अगर वे पर्याप्त खुशकिस्मत रहे कि उन्हें कोई पक्की नौकरी मिल गई, तो अगला पूरा दशक उनका लोन चुकाने में ही निकल जाएगा। किसी प्राइवेट यूनिवर्सिटी से सिर्फ बीए की डिग्री लेने में ही 6 लाख रुपये से ज्यादा खर्च हो जाते हैं, और ज्यादातर ग्रेजुएट 'गिग वर्कर' (अस्थायी कामगार) या सेमी-स्किल्ड मजदूरों की जमात को थोड़ा और लंबा कर देते हैं।

2020 से 2024 के बीच, बकाया एजुकेशन लोन 65,000 करोड़ रुपये से बढ़कर 1.29 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच गया। यह उस आबादी की बेबसी का सबूत है जो अपने बच्चों को शिक्षित करने की मजबूरी और एक ऐसे लेबर मार्केट के बीच फंसी हुई है, जहां उन्हें बदले में कुछ भी नहीं मिलता।

जाति व्यवस्था की ओर वापसी

जब बी.टेक की डिग्री के बावजूद जोमेटो डिलीवरी बाइक चलाने से भी कम कमाई होती है, तो गुणा-गणित स्वाभाविक ही बदल जाता है।

इसका नतीजा पहले से ज्ञात है। पहली पीढ़ी के जो छात्र आगे बढ़ना चाहते हैं, वे खुद को ऐसे 'गिग वर्क' (अस्थायी काम) की ओर जाते हुए पाएंगे, मसलन- डिलीवरी राइडर, मॉल में कस्टमर सर्विस, वेयरहाउस में सामान छांटने वाले, सप्लाई चेन में मजदूरी आदि... और जिन्हें यह काम भी नहीं मिल पाएगा, उनके लिए सबसे पुराना सहारा ही फिर से लौट आएगाः ऐसा काम जो योग्यता या अपनी चाहत से नहीं, बल्कि जाति से तय होता है। जहां बढ़ई का बेटा बढ़ई ही बनता है। बुनकर की बेटी बुनकर ही रह जाती है। दरअसल, उनके लिए अन्य सभी रास्ते बंद हो चुके होते हैं।

यह कोई डराने वाली बात नहीं है। पर सच्चाई यह है कि जाति-आधारित आर्थिक ढांचे की ओर वापसी अब बस होने को है। अगर लोगों को यह लगने लगे कि डिग्री से बेहतर रोजगार नहीं सिर्फ कर्ज का बोझ ही मिलेगा, तो शिक्षा का महत्व पूरी तरह से खत्म ही हो जाएगा।

पिछले हफ्ते नोएडा में जिन मजदूरों ने वाहन जलाए थे, वे पाकिस्तान के एजेंट नहीं थे। वे न तो 'देश-विरोधी' थे और न ही 'अर्बन नक्सल'। वे एक ऐसे नए श्रम कानून के शिकार हैं, जो उन्हें 12 घंटे की शिफ्ट में काम करने पर मजबूर करता है, और इसे 'अपनी मर्जी' से किया गया काम बताकर प्रस्तुत करता है! हरियाणा और उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकारों ने इन विरोध-प्रदर्शनों के जवाब में 'रैपिड एक्शन फोर्स' तैनात की, दंगा करने के आरोप में मजदूरों/कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया और कमेटियां बना दीं। अपना संपादकीय विवेक और हिम्मत बहुत पहले ही विज्ञापन और पहुंच के बदले बेच चुके टेलीविजन चैनलों ने इसमें 'किसी विदेशी हाथ' के संकेत तलाशने शुरू कर दिए।

लेकिन असल में तो यह कहानी लिखने वाला हाथ मोदी का ही है। आग की चिंगारी तो एक वेल्डिंग टॉर्च से उठी थी, लेकिन उसे लगातार जलाए रखने के लिए जरूरी ईंधन पिछले दस साल से जमा हो रहा था। और इसका नाम है- मोदीनॉमिक्स। ■

गुरदीप सिंह सप्पल कांग्रेस कार्यसमिति के स्थायी आमंत्रित सदस्य हैं

कोई 'दलाली' नहीं, हम भारतीय हैं

मध्यस्थता के प्रति नफरत नुकसानदेह। डेढ़ दशक पुरानी सलाह से हो सकती है सुधार की शुरुआत

आकार पटेल

मुझे ठीक से पता नहीं क्यों, लेकिन भारत सरकार को अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता का विचार पसंद नहीं आता। यह अरुचि मध्यस्थ और मध्यस्थता की जरूरत वाले पक्षों, दोनों में ही देखी जाती है। हम यह इसलिए जानते हैं क्योंकि हम हमेशा से यही कहते आए हैं। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि सभी भारतीय सरकारों के शासनकाल में यही बात रही है कि दो देशों के बीच लंबित मुद्दों का समाधान द्विपक्षीय रूप से होना चाहिए। यह रुख विशेष रूप से एक पड़ोसी देश के संदर्भ में है। उस पड़ोसी देश के प्रति हमारी घृणा, जो इस समय अमेरिका और ईरान के बीच मध्यस्थता कर रहा है, हाल ही में हमारे विदेश मंत्री द्वारा व्यक्त की गई, जिन्होंने उन्हें अपमानजनक शब्द 'दलाल' से संबोधित किया।

तो, हम दलाली बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करेंगे, लेकिन उस समस्या को सुलझाने के लिए हम क्या करेंगे जो हमसे जुड़ी है और हमें प्रभावित करती है, यह अभी साफ नहीं है। हम इसमें शामिल हैं, क्योंकि हम भी बाकी दुनिया की तरह ही कीमतों और चीजों की कमी, दोनों ही मामलों में दिक्कतें झेल रहे हैं। लेकिन हम बस तमाशबीन बनकर खुश हैं। उम्मीद कर रहे हैं कि यह संकट अपने आप ही सुलझ जाएगा, या फिर कोई और इसे सुलझा देगा, ताकि हमारे लिए हालात फिर से सामान्य हो जाएं। भारत ने मौजूदा युद्ध को इसी नजरिये से देखने का फैसला किया है। हम इस बात से सहमत या असहमत हो सकते हैं कि क्या भारत को और ज्यादा कुछ करना चाहिए था, या फिर कुछ अलग तरह से काम करना चाहिए था।

मैं दूसरे दृष्टिकोण के बारे में लिखना चाहता था। वह दृष्टिकोण जिसे अभी लागू नहीं किया जा रहा है। हमें इस बात का अनुमान लगाने की जरूरत नहीं है कि वह दृष्टिकोण क्या हो सकता है, क्योंकि पिछली सरकार हमारे लिए एक ऐसा दस्तावेज छोड़ गई है जो हमें बताता है कि वह दृष्टिकोण क्या होना चाहिए।

फोटोः गेटी इमेजेज

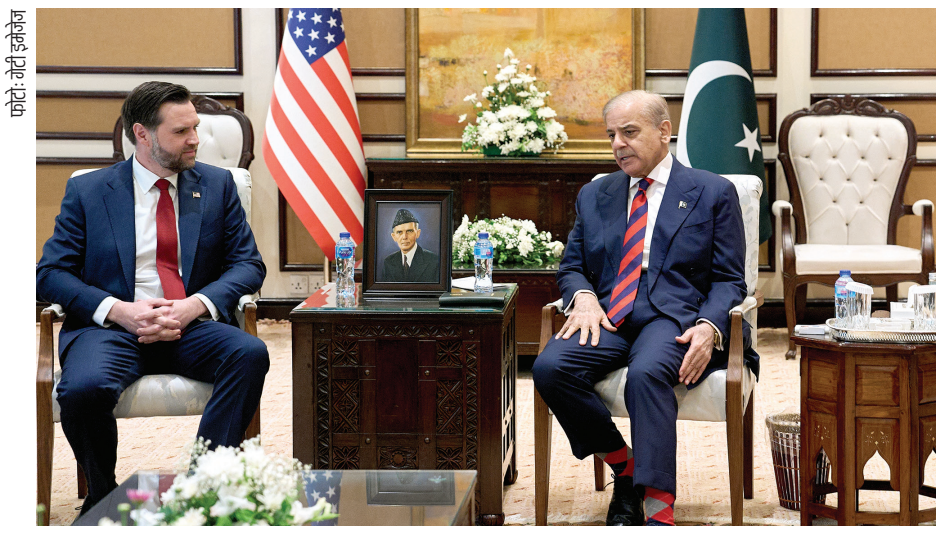

इस्लामाबाद में अमेरिका-ईरान शांति वार्ता करते अमेरिकी उपराष्ट्रपति जेडी वेंस और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ

4 नवंबर 2013 को तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 120 से ज्यादा भारतीय मिशनों के प्रमुखों से बात की और उन पांच सिद्धांतों की रूपरेखा पेश की, जो उनकी विदेश नीति को परिभाषित करते थे। ये सिद्धांत थेः पहला, यह स्वीकार करना कि दुनिया के साथ, यानी प्रमुख शक्तियों और एशियाई पड़ोसियों के साथ भारत के संबंध उसकी विकास प्राथमिकताओं से तय होते हैं। सिंह ने कहा कि 'भारतीय विदेश नीति का सबसे अहम मकसद एक ऐसा वैश्विक माहौल बनाना होना चाहिए, जो हमारे महान देश की भलाई के लिए अनुकूल हो'।

दूसरा, यह कि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अधिक एकीकरण से भारत को लाभ होगा और इससे भारतीयों को अपनी रचनात्मक क्षमता को साकार करने का अवसर मिलेगा। तीसरा, सभी प्रमुख शक्तियों के साथ स्थिर, दीर्घकालिक और पारस्परिक रूप से लाभकारी संबंध स्थापित करना। अंतरराष्ट्रीय समुदाय के साथ मिलकर एक ऐसा वैश्विक आर्थिक और सुरक्षा वातावरण तैयार करना, जो सभी राष्ट्रों के लिए लाभकारी हो। चौथा, यह स्वीकार करना कि भारतीय उपमहाद्वीप के साझा भविष्य के लिए अधिक क्षेत्रीय सहयोग और संपर्क की आवश्यकता है।

पांचवां, एक ऐसी विदेश नीति जो केवल हितों से ही नहीं, बल्कि भारतीयों को प्रिय मूल्यों से भी परिभाषित होः 'एक बहुलवादी, धर्मनिरपेक्ष और उदार लोकतंत्र के ढांचे के भीतर आर्थिक विकास की राह पर आगे बढ़ने के भारत के प्रयोग ने दुनिया भर के लोगों को प्रेरित किया है, और इसे आगे भी ऐसा ही करते रहना चाहिए।'

अगर हम इस बात से सहमत हैं कि 'भारतीय विदेश नीति का सबसे अहम मकसद एक ऐसा वैश्विक माहौल बनाना होना चाहिए जो भारत की भलाई के लिए अनुकूल हो', तो जाहिर है कि हमें यह पक्का करना चाहिए था कि वह माहौल खराब न हो। भारत उन गिने-चुने देशों में से एक है, और शायद अकेला ऐसा देश है, जिसके अमेरिका, इसराइल और ईरान—तीनों के साथ अच्छे रिश्ते हैं। पाकिस्तान इनमें से दो देशों का दोस्त है। यह जानते हुए कि खाड़ी क्षेत्र में युद्ध होने से हमारी अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचेगा, पक्का करने की कोशिश करनी चाहिए थी कि यह युद्ध शुरू ही न हो। लेकिन ऐसा नहीं किया। हमने 'क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी' में शामिल न होने का फैसला किया। तीसरा बिंदु, चीन के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। 2020 के बाद की स्थितियां बिल्कुल स्पष्ट हैं। चौथा और पांचवां मुद्दा ऐसा है जहां 2014 के बाद से सर्वाधिक बदलाव आया है। दक्षिण एशिया में सीमाएं या तो कठोर बनी हुई हैं या बंद। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम एकमात्र ऐसी शक्ति जिसकी सीमाएं बाकी देशों से मिलती हैं, यही चाहते हैं।

इसराइल हमारा 49वां सबसे बड़ा निर्यात और 48वां सबसे बड़ा आयात भागीदार है। यानी, सबसे निचले पायदान के भागीदारों में से एक। इसराइल के प्रति दीवानगी की वजह यह है कि हम भी अपने अल्पसंख्यकों के साथ ठीक वैसा ही करना चाहते हैं, जैसा इसराइल फिलिस्तीनियों के साथ कर रहा है। अगर लगता है कि अपनी दिशा सुधारने की जरूरत है, तो डेढ़ दशक पहले मनमोहन सिंह द्वारा दी गई समझदारी भरी सलाह से शुरुआत करना बेहतरीन कदम होगा। ■

भारत, इसराइल के प्रति इतना दीवाना क्यों है? क्योंकि हम भी अपने अल्पसंख्यकों के साथ ठीक वैसा ही करना चाहते हैं, जैसा इसराइल फिलिस्तीनियों के साथ कर रहा है

इस समाचारपत्र का प्रकाशन **पवन कुमार बंसल** द्वारा हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-11002 से **दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड**, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 की ओर से संपादन **राजेश झा** द्वारा और मुद्रण आर. सी. मल्होत्रा द्वारा दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से किया जा रहा है।

जबर्दस्त दबाव में लोग

आधिकारिक आंकड़े और जमीनी सच्चाई के बीच का अंतर काफी बड़ा । महंगाई का आंकड़ा उस दंश को नहीं बताता जिसे परिवार झेल रहे हैं

अजित रानाडे

भारतीय रिजर्व बैंक के परिवार महंगाई सर्वेक्षण अनुमान (मार्च 2026 राउंड) के मुताबिक, महंगाई की धारणा 7.2 फीसद रही। यह फरवरी के लिए आधिकारिक उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) पर आधारित 3.2 फीसद महंगाई के दोगुने से भी ज्यादा है। सीपीआई को हाल ही में नए सिरे से तैयार किया गया था ताकि यह असली महंगाई को ज्यादा बेहतर तरीके से दिखा सके। आरबीआई का सर्वे यह भी दिखाता है कि परिवारों का अनुमान है कि अगले तीन महीनों में कीमतें 8.5 फीसद और पूरे साल में 8.8 फीसद बढ़ेंगी। आधिकारिक आंकड़ों और जमीनी हकीकत के बीच का यह अंतर शायद ही कभी राजनीतिक रूप से इतना संवेदनशील रहा हो।

इस बीच, भारत तेल की दोहरी मार में फंसा हुआ है। पहली मार ईंधन की है। पश्चिम एशिया में चल रहे संघर्ष के कारण मार्च में कच्चे तेल की कीमत 115 डॉलर प्रति बैरल तक पहुंच गई, जिससे परिवहन और बिजली की लागत, और लगभग सभी तरह के मैन्युफैक्चर्ड सामान की कीमत बढ़ गई है। खुद आरबीआई मानता है कि अगर फिर से संघर्ष शुरू हुआ तो इस साल के लिए उसका 85 डॉलर प्रति बैरल का अनुमान आसानी से टूट सकता है। इस महीने के शुरू में अमेरिका और ईरान में हुआ संघर्ष-विराम काफी नाजुक है। शांति वार्ता नाकाम हो गई है। फिर लड़ाई छिड़ी, तो तेल की कीमतें और उसके साथ-साथ भारत में महंगाई भी तेजी से बढ़ जाएगी।

दूसरे तरह का तेल वह है जिसका इस्तेमाल भारतीय खाना पकाने के लिए करते हैं। भारत अपनी जरूरत का लगभग 90 फीसद खाने का तेल आयात करता है- पाम ऑयल इंडोनेशिया और मलेशिया से, सोया ऑयल अर्जेंटीना और ब्राजील से, और सूरजमुखी का तेल रूस और यूक्रेन से। पश्चिम एशिया के संकट ने दुनिया भर के कमोडिटी बाजारों को झकझोर दिया है और कच्चे तेल के साथ-साथ खाने के तेल की कीमतें भी तेजी से बढ़ गई हैं। खाने के तेल की खुदरा कीमतें एक हफ्ते में ही 1 से 4 रुपये प्रति किलोग्राम तक बढ़ गईं। मार्च में भारत का पाम ऑयल आयात 19 फीसद गिरकर तीन महीने के सबसे निचले स्तर पर पहुंच गया, क्योंकि कीमतों को लेकर चिंतित रिफाइनरों ने खरीदारी रोक दी।

इससे आने वाले महीनों में घरेलू उपलब्धता और भी कम हो जाएगी। ये दोनों तेल घर के बजट पर भारी पड़ते हैं। स्वास्थ्य सेवा, दवाइयों, शिक्षा, परिवहन और घर के किराये में महंगाई पिछले कई सालों से काफी ज्यादा रही है, जैसा कि सौरभ मुखर्जी, नंदिता राजहंस और सपना भवसार की 2026 की किताब 'ब्रेकपॉइंटः दि क्राइसिस ऑफ द मिडल क्लास एंड द फ्यूटर वर्क' में बताया गया है। भारत की हाल ही में बदली गई सीपीआई बास्केट में अब भी एक ढांचागत कमी है। यह उन मौजूदा किरायेदारों द्वारा दिए जाने वाले किराये को ही शामिल करती है, जिनके किराये हर साल एक तय फॉर्मूले के हिसाब से 5–10 फीसद बढ़ते हैं; यह नए आने वालों द्वारा दिए जाने वाले किराये को शामिल नहीं करती। भारत के अलग-अलग शहरों में ब्रोकर और किरायेदार अक्सर किराये में दहाई अंकों की बढ़ोतरी की बात करते हैं, जबकि सरकारी आंकड़ों में आवास से जुड़ी महंगाई कम दिखाई देती है।

गड़बड़ है थर्मामीटर

यह इंडेक्स गलत कीमत माप रहा है। सरकारी थर्मामीटर सही तापमान नहीं बता रहा। यह ऐसे समय हो रहा है, जब वास्तविक मजदूरी ठिठक गई है, खासकर ग्रामीण भारत में। जब हर चीज महंगी हो जाती है और उस अनुपात में मजदूरी नहीं बढ़ती, तो परिवार खाने-पीने में कटौती करते हैं, इलाज टाल देते हैं, बच्चों को निजी स्कूलों से निकाल लेते हैं। हरियाणा के मानेसर और नोएडा के इंडस्ट्रियल इलाकों में मजदूरी बढ़ाने के लिए जो विरोध प्रदर्शन हम देख रहे हैं, वे सिर्फ मजदूरों के झगड़े नहीं। वे महंगाई का सामाजिक रूप हैं। मानेसर में, फैक्टरी मजदूरों ने काम का बायकॉट किया, पुलिस से भिड़ गए, और सरकार को एक बड़ा समझौता करने पर मजबूर कर दिया। सरकार ने अकुशल मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी में 35 फीसद की बढ़ोतरी का ऐलान किया। यह भी काफी नहीं है। ये विरोध प्रदर्शन इसकी अभिव्यक्ति हैं कि सालों से महंगाई, मजदूरी में बढ़ोतरी से कहीं तेजी से बढ़ी है।

नोएडा में, वस्त्र और होजरी फैक्टरियों के मजदूरों ने पत्थरबाजी, आगजनी और तोड़फोड़ का सहारा लिया। हरियाणा की तरह ही, वे भी न्यूनतम मजदूरी बढ़ाने की मांग कर रहे हैं। भारत में लगभग 40 करोड़ ऐसे प्रवासी मजदूर हैं जिनपर खाने और ईंधन की कीमतों में वृद्धि का बहुत असर पड़ता है। जब एक वक्त के खाने की कीमत दोगुनी हो जाती है और एलपीजी मिलना मुश्किल हो जाता है, तो उनमें से कई लोग अपने गांव लौट जाते हैं। इंडिया एसएमई फोरम बार-बार इस ओर ध्यान खींचता है कि, 'एक बार जब मजदूर लौट जाते हैं, तो उन्हें वापस लाना बेहद मुश्किल होता है।' भारत में मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर की प्रतिस्पर्द्धा पर पहले से ही वैश्विक सप्लाई चेन में रुकावटों का दबाव है, और अब इस पर मंडराता यह खतरा!

पिछले वित्त वर्ष में डॉलर के मुकाबले रुपया 10 फीसद गिरा। मार्च में यह गिरावट काफी तेज थी, और एक्सचेंज रेट 95 के पार चला गया। आरबीआई ने इसपर कड़ा कदम उठाते हुए सख्ती दिखाई। आरबीआई ने घरेलू बैंकों के, रुपये-डॉलर की दरों पर होने वाली ऑफशोर सट्टेबाजी में हिस्सा लेने से प्रभावी रूप से रोक लगा दी। तकनीकी रूप से यह नॉन-डिलीवरेबल फॉरवर्ड मार्केट आरबीआई के नियामक दायरे से बाहर है और सिंगापुर, लंदन या न्यूयॉर्क में काम करता है। यह 149 अरब डॉलर रोजाना का एक ऑफशोर मार्केट है, जो हर दिन काम करता है और गिरते रुपये के जोखिम से बचने का मौका देता है। यह देश के अंदर के लोगों के लिए एक संकेत भी है, जिससे वे अंदाजा लगा पाते हैं कि रुपया किस दिशा में जाएगा। हालांकि आरबीआई की इस सख्ती से रुपया मजबूत हुआ है, लेकिन यह साफ नहीं है कि अगर ईरान में युद्ध जारी रहता है, तो यह मजबूती बनी रहेगी या नहीं। ऐसे में, रुपये को सहारा देने के लिए आरबीआई के दखल की वजह से भारत को सिर्फ मार्च महीने में ही अपने कीमती विदेशी मुद्रा भंडार में से 30.5 अरब डॉलर गंवाने पड़े हैं।

आरबीआई ने गहरी नाराजगी जाहिर की है कि बैंक रुपये की कमजोरी का फायदा उठाकर मुनाफा कमाने के लिए विदेशी-देशी अंतर का इस्तेमाल कर रहे हैं। लेकिन जैसा कि बारीक से देखने पर पता चलता है, विदेशी एनडीएफ बाजार तो सिर्फ लक्षण है, असली बीमारी नहीं। असली बीमारी तो भारत का ढांचागत चालू खाता घाटा है, जो तेल के भारी-भरकम आयात बिलों की वजह से और बढ़ गया है। इसके साथ ही, पिछले दो सालों में पोर्टफोलियो से 26 अरब डॉलर बाहर चला गया और शुद्ध एफडीआई भी शून्य या नकारात्मक हो गया है। ये अर्थव्यवस्था की ऐसी असली कमजोरियां हैं जिन्हें डेरिवेटिव-बाजार की कितनी भी निगरानी करके हमेशा के लिए ठीक नहीं किया जा सकता।

मुद्रा कोष और विश्व बैंक ने अपनी बैठकों (13-18 अप्रैल) में वैश्विक विकास के अनुमानों को घटा दिया है। आरबीआई ने रेपो रेट को 5.25 फीसद पर स्थिर रखा है और अनुमान लगाया है कि 2026–27 में महंगाई औसतन 4.6 फीसद रहेगी। यह बहुत सोच-समझकर लगाया गया अनुमान है। लेकिन अगर तेल की कीमतें ऊंची बनी रहती हैं, अगर पश्चिम एशिया में संघर्ष-विराम टूट जाता है, और अगर मॉनसून निराश करता है, तो ये अनुमान टिक नहीं सकेंगे।

भारतीय परिवार सीपीआई की प्रेस रिलीज नहीं पढ़ते। वे तो खाना पकाने के तेल के टिन पर लिखी कीमत, गैस सिलेंडर के बिल, स्कूल की फीस के नोटिस और मेडिकल बिल पर लिखी कीमतों को पढ़ते हैं और आरबीआई सर्वे बता रहा है कि कीमतें आधिकारिक दर से दोगुने से भी ज्यादा तेजी से बढ़ रही हैं। ■

घरेलू बजट को बढ़ाने वाली हैं खाद्य तेलों की बढ़ती कीमतें

इस महीने के शुरू में अमेरिका और ईरान में हुआ संघर्ष-विराम काफी नाजुक है। शांति वार्ता नाकाम हो गई है। अगर फिर लड़ाई छिड़ी, तो तेल की कीमतें और उसके साथ-साथ भारत में महंगाई भी तेजी से बढ़ जाएगी

डॉ. अजित रानाडे जाने-माने अर्थशास्त्री हैं। सौजन्य: द बिलियन प्रेस

तन गईं असंतुष्ट श्रमिकों की मुट्ठियां

महंगाई बढ़ रही और उनकी सुनने वाला कोई नहीं, संगठित क्षेत्र के ठेका मजदूरों की व्यथा-कथा एकसमान

नंदलाल शर्मा

कोई चेहरा नहीं, कोई नेता नहीं, कोई यूनियन नहीं। फिर भी, अलग-अलग हिस्सों में लाखों श्रमिक सैलरी बढ़ाने के लिए आंदोलित हैं। शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे हैं, मगर उत्तर प्रदेश के नोएडा सहित कई जगहों पर प्रदर्शन हिंसक भी हुआ है। ठेका मजदूरों के इस श्रृंखलाबद्ध विरोध प्रदर्शन की शुरुआत बरौनी स्थित इंडियन ऑयल की रिफाइनरी से हुई। उनलोगों ने वेतन बढ़ाने, काम की अवधि आठ घंटे करने और उन्हें पीएफ तथा ईएसआईसी जैसी सुविधाएं देने की मांग की।

23 फरवरी 2026 को हरियाणा के पानीपत में इंडियन ऑयल की रिफाइनरी में 30 हजार से ज्यादा ठेका मजदूरों ने हड़ताल कर दी। 27 फरवरी को गुजरात में सूरत के हजीरा में ऑर्सेलर मित्तल निप्पॉन स्टील के प्रोजेक्ट पर कार्यरत लॉर्सन एंड टुब्रो के 5,000 ठेका मजदूरों ने हड़ताल की। एनटीपीसी पतरातू (झारखंड), एनटीपीसी नबीनगर औरंगाबाद (बिहार), अडानी थर्मल पावर प्लांट कोरबा (छत्तीसगढ़), वेदांता पावर प्लांट सिंघीतराई (छत्तीसगढ़), हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड चित्तौड़गढ़ (राजस्थान), इंडियन ऑयल वड़ोदरा (गुजरात), ओबरा थर्मल पावर प्लांट सोनभद्र (उत्तर प्रदेश) में आंदोलन की खबरें हैं। जनवरी से मार्च 2026 तक बड़े पावर प्लांटों एवं ऊर्जा के प्रमुख केन्द्रों में दो दर्जन से ज्यादा मजदूर हड़तालें रिपोर्ट हुई हैं। ध्यान रहे कि सबसे पहले 1 जनवरी 2026 को गिग वर्कर्स ने काम के बेहतर हालात और अधिकारों की मांग को लेकर हड़ताल की थी।

मार्च-अप्रैल में हरियाणा, खास तौर से मानेसर की कई कंपनियों में आंदोलन हुए। इनमें होन्डा, मुंजाल शोवा, सत्यम ऑटो कंपोनेन्ट, रूप पॉलिमर लिमिटेड, ऋचा ग्लोबल, मॉडेलमा एक्सपोर्ट जैसी कंपनियां शामिल हैं। कंपनी प्रबंधन को झुकना पड़ा और जिनकी तनख्वाह पहले लगभग 11,200 रुपये थी, उसे बढ़ाकर 16,000 रुपये किए गए।

झारखंड एटक से जुड़े ट्रेड यूनियन लीडर आनंद कुमार कहते हैं कि आंदोलनकारी संगठित क्षेत्र के ठेका मजदूर हैं। यह दायरा बढ़ रहा है। अर्बन कंपनी मुख्यतः दिल्ली-एनसीआर में महिलाओं को घरों में बर्तन सफाई, झाड़ू-पोछा आदि के लिए भेजने के खयाल से सर्विस प्रोवाइडर या फैसिलेटेटर के काम करती है। ये महिलाएं भी कम भुगतान की वजह से आंदोलित हैं।

मजदूरों का सबसे बड़ा हथियार बना मोबाइल, जिसके जरिये उन्होंने वीडियो और रील बनाकर साझा किया, और दूसरे मजदूरों को प्रेरित किया है। मजदूर अधिकार कार्यकर्ता सुनंद कहते हैं कि 'प्रदर्शन करने वाले मजदूर सोशल मीडिया के जरिये भी अपनी आवाज उठा रहे थे। इस तरह एक कारखाने के मजदूर ने दूसरे कारखाने के मजदूर को अपने हक के लिए आवाज उठाने को प्रेरित किया। ईरान युद्ध के बाद पैदा हुए ईंधन संकट ने उत्प्रेरक का काम किया क्योंकि कुछ जगह कंपनियों ने मजदूरों से काम लेना बंद किया, तो उन्हें गांव लौटने पर भी विवश होना पड़ा।'

फोटोः विपिन

नोएडा के आंदोलनकारी श्रमिक जो अन्य सुविधाओं के साथ वेतन बढ़ाने की भी मांग कर रहे

नोएडा फेज 2 में शाही एक्सपोर्ट्स में चेकर का काम करने वाली भारती कुमारी बताती हैं कि 'काम करते हैं 12 घंटे और हमारी सैलरी है लगभग 12 हजार। कमरे का किराया है 6,000 रुपये। पेट्रोल 100 रुपये प्रति लीटर होने को है। गैस 400 रुपये किलो तक मिलने लगी है। ऊपर से बच्चों की पढ़ाई का बोझ अलग है। स्कूल वाले दोनों सेमेस्टर की फीस एक साथ जमा करने को कहते हैं। हम खाएंगे क्या? हमारी सैलरी 20 हजार महीना होनी चाहिए।'

ऐसा नहीं कि सरकारों ने श्रमिकों का विरोध दबाने की कोशिश नहीं की। हरियाणा सरकार ने 7 अप्रैल को पूरे मानेसर-गुड़गांव क्षेत्र में धारा 144 लागू कर दी। इसके बावजूद 8 अप्रैल को और मजदूर हड़ताल पर उतरे। जब संघर्ष बढ़ता गया, तब सरकार ने दमन चक्र चलाना शुरू किया। 8 अप्रैल को मानेसर में मजदूरों पर लाठीचार्ज किया गया। 9 अप्रैल को हरियाणा पुलिस ने 20 से ज्यादा महिलाओं समेत 50 से अधिक मजदूरों को गिरफ्तार किया।

11 अप्रैल को यूपी पुलिस ने 4 मजदूर कार्यकर्ताओं को नोएडा में बॉटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन से गिरफ्तार कर लिया। 12 अप्रैल को उनकी जमानत कराने गए वकीलों-प्रतीक कुमार और मोहम्मद तनवीर अली तथा 2 अन्य कार्यकर्ताओं को भी हिरासत में ले लिया।

हरियाणा में श्रमिकों का वेतन 2015 में रिवाइज हुआ था। भाजपा और भारतीय मजदूर संघ ने समझाया था कि 1 अप्रैल से सभी मजदूरों की सैलरी बढ़ जाएगी, सब पक्के हो जाएंगे, सबको तमाम सुविधाओं का लाभ मिलेगा। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसी वजह से उन्हें सड़कों पर उतरना पड़ा

कायदे से, इसे पांच साल बाद 2020 में रिवाइज हो जाना था, लेकिन राज्य सरकार 6 साल तक टालती रही। नतीजा यह हुआ कि न्यूनतम वेतन नहीं बढ़ा और जब दबाव बना तो मई 2025 में राज्य सरकार ने एक कमिटी बनाई। इसकी 9 मीटिंग हुईं। लेकिन कोई नोटिफिकेशन जारी नहीं हुआ। फिर अप्रैल 2026 में श्रमिकों का स्वतःस्फूर्त आंदोलन खड़ा हो गया। इसके दबाव में ही हरियाणा सरकार को 9 अप्रैल को वेतन वृद्धि की अधिसूचना जारी करनी पड़ी, जिसमें न्यूनतम मासिक वेतन रुपये 15,220 (अकुशल) और रुपये 19,425 (कुशल) किया गया है, हालांकि मजदूरों की मांग 25-30 हजार रुपये प्रति महीने की रही है।

नोएडा में विरोध प्रदर्शन तब उग्र हुआ, जब हरियाणा सरकार ने न्यूनतम वेतन में संशोधन किया। हालांकि चार दिनों के प्रदर्शन के बाद मजदूरों का धैर्य जवाब दे गया। 13 अप्रैल की सुबह प्रदर्शन भड़क उठा और इसके अगले दिन यूपी सरकार ने मजदूरों की सैलरी में मामूली इजाफे का ऐलान किया। अंतरिम तौर पर की गई इस घोषणा के बाद यूपी में अकुशल श्रमिकों को 13,313 रुपये से बढ़कर 13,690 रुपये मिलेंगे। अर्धकुशल श्रमिकों की 15,059 रुपये और कुशल श्रमिकों की 16,868 रुपये प्रति महीना नई सैलरी होगी। इसके बाद गौतम बुद्ध नगर की जिलाधिकारी मेधा रूपम ने कहा कि आउटसोर्सिंग एजेंसी एवं एजेंसी के श्रमिकों द्वारा उपद्रवी व्यवहार करने पर एजेंसी को ब्लैकलिस्ट किया जाएगा। उनका लाइसेंस निरस्त होगा।

अर्थशास्त्री प्रो. अरुण कुमार कहते हैं कि 'हमारे यहां बेरोजगारी बहुत ज्यादा है, 94 प्रतिशत लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। ऊपर से वास्तविक महंगाई बहुत ज्यादा है, और मजदूर की 'असल आय' बहुत तेजी से गिर रही है। अगर आपकी तनख्वाह जस की तस रहे और महंगाई बढ़ जाए, तो असली आय कम हो जाती है, यानी आपकी खरीदने की क्षमता घट जाती है। तनख्वाह नहीं बढ़ रही, लेकिन महंगाई बढ़ रही है। मजदूर तनख्वाह को महंगाई के हिसाब से नहीं बढ़वा पा रहे। संगठित क्षेत्र भी अब स्थायी मजदूरों की जगह ठेका मजदूर रख रहा है। ये ठेका मजदूर यूनियन में नहीं होते, इसलिए वे संगठित ढंग से लड़ाई नहीं लड़ पाते। तभी गुरुग्राम-नोएडा सहित तमाम हिस्सों में प्रदर्शन देखने को मिल रहे हैं, क्योंकि सबकी परेशानी एक जैसी है।'

बड़ी बात यह है कि नए लेबर कोड में फैक्ट्री की परिभाषा बदल दी गई है। पहले जहां बिजली से चलने वाली फैक्ट्री में 10 मजदूर और बिना बिजली वाली फैक्ट्री में 20 मजदूर होने पर कानून लागू होता था, अब मजदूर सीमा बढ़ाकर क्रमशः 20 और 40 कर दी गई है। मतलब, बहुत सी छोटी फैक्ट्रियां अब कानून के दायरे से बाहर हो जाएंगी। जब फैक्ट्री कानून के दायरे से बाहर हो जाएगी, तो कोई नहीं देखेगा कि वहां 8 घंटे काम हो रहा है, 12 घंटे या 14 घंटे। ठेका मजदूरों के मामले में भी यही हो रहा है। पहले अगर कोई ठेकेदार 20 या उससे ज्यादा मजदूर सप्लाई करता था, तो उसे लाइसेंस लेना पड़ता था। यह सीमा 50 कर दी गई है। अगर कोई ठेकेदार 48 मजदूर सप्लाई करता है, तो लाइसेंस की जरूरत नहीं होगी। लाइसेंस नहीं होगा, तो कानून भी लागू नहीं होगा।

एटक की महासचिव अमरजीत कौर कहती हैं कि 'सरकार की तरफ से कहा जा रहा था कि 'इंस्पेक्टर राज' खत्म करना है और उसकी जगह 'फैसिलिटेटर' लाना है, जबकि ट्रेड यूनियन कह रहे थे कि नए लेबर कोड मजदूरों को गुलामी की ओर धकेलते हैं। इससे औद्योगिक अशांति बढ़ेगी। अब जो घटनाएं अलग-अलग राज्यों में हो रही हैं, वे उसी का संकेत हैं और यह आगे और फैल सकती हैं।'

नोएडा फेज-2 में प्रदर्शनकारी अकुशल मजदूर सिर्फ सैलरी बढ़ाने की बात करते हैं, वह चार नए श्रम कानूनों का जिक्र नहीं करते हैं। मगर नवंबर 2025 के बाद से भाजपा और भारतीय मजदूर संघ ने प्रचार किया कि चार नए लेबर कोड मजदूरों के हित में हैं।

सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियंस के हरियाणा महासचिव जयभगवान कहते हैं कि 'यह ऑफिशियल प्रोपेगैंडा था, मगर अनऑफिशियल प्रोपेगैंडा था कि 1 अप्रैल से सैलरी बढ़ जाएगी, सबको तमाम सुविधाओं का लाभ मिलेगा। इसलिए अकुशल श्रमिकों को उम्मीद थी कि 1 अप्रैल से उनकी जिंदगी बदल जाएगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। मजदूर भले लेबर कोड की बात नहीं करते हो, लेकिन अंत में उनकी लड़ाई नए श्रम कानूनों के खिलाफ ही होगी।' ■

क्या छिपाना चाहता है चुनाव आयोग?

पश्चिम बंगाल में एसआईआर के मामले में 'सबर इंस्टीट्यूट' के साबिर अहमद और आशिन चक्रवर्ती से सौरभ सेन ने बात की

कोलकाता के सबर इंस्टीट्यूट के आशिन चक्रवर्ती (बाएं) और साबिर अहमद

कोलकाता के खिदिरपुर इलाके में, सेंट थॉमस स्कूल के ठीक सामने एक पुरानी और जर्जर इमारत की संकरी सीढ़ी तीसरी मंजिल के एक कमरे तक जाती है। दरवाजे पर चिपका एक ए-4 साइज का कागज बताता है कि यह 'सबर (एसएबीएआर) इंस्टीट्यूट' है। यह एक रजिस्टर्ड ट्रस्ट है। ट्रस्ट के नाम के नीचे लिखा है- 'डेटा फॉर बेटर लाइव्स' (बेहतर जीवन के लिए डेटा) जो साफ कर देता है कि संगठन का मुख्य काम क्या है। वैसे तो यह संगठन पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से डेटा-आधारित रिसर्च के काम में लगा है, लेकिन पिछले छह महीनों के दौरान इसने भारत निर्वाचन आयोग द्वारा पश्चिम बंगाल में चलाए गए 'स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन' (एसआईआर) कार्यक्रम पर जो काम किया, उसकी वजह से इसने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है।

48 साल के डेटा रिसर्चर साबिर अहमद ने इसे शुरू किया था। सबर की छोटी-सी युवा टीम है। वे लोग दिलचस्प तरीके से बताते हैं कि कैसे उनके पास पश्चिम बंगाल के मुख्य निर्वाचन अधिकारी के दफ्तर से फोन आया कि आकर मिलें। वह बताते हैं कि पहले तो हम उलझन में पड़ गए कि यह निमंत्रण है या फिर उन्हें गिरफ्तार किया जाने वाला है!

सबर की टीम ने कुछ ही समय पहले चुनाव आयोग द्वारा दिसंबर 2025 में जारी मतदाताओं की मसौदा सूची पर अपना विश्लेषण जारी किया था, जिसमें अनुपस्थित, स्थानांतरित, मृत और डुप्लीकेट श्रेणियों (एएसडीडी) के तहत 58 लाख मतदाताओं के नाम हटाए गए थे। हालांकि, चुनाव आयोग के अधिकारियों ने बहुत ही गर्मजोशी से उनका स्वागत किया और उनसे पूछा गया कि क्या वे आयोग के साथ मिलकर काम करना चाहेंगे? अधिकारी यह जानने के लिए भी उत्सुक थे कि इस युवा और छोटी-सी टीम ने इतने कम समय में इतने विशाल डेटा सेट का विश्लेषण कैसे कर लिया।

अर्थशास्त्र में मास्टर्स की पढ़ाई करने वाले एसोसिएट आशिन चक्रवर्ती बताते हैं कि असल में यह काम मेहनत वाला जरूर था, लेकिन उतना भी मुश्किल नहीं था। मसौदा सूची एक मशीन-रीडेबल फॉर्मेट में थी, जिसमें नाम हटाने की वजह समेत सभी जरूरी जानकारियां दर्ज थीं। खैर, संभव है विशेषज्ञों के लिए यह आसान हो! उन्होंने पाया कि चुनाव आयोग की बाद की सभी सूचियों में डेटा को 'फायरवॉल' से सुरक्षित किया गया था, जिससे आम लोगों और शोधकर्ताओं के लिए डेटा तक पहुंचना और मुश्किल हो गया था।

इस क्षेत्र में 20 साल का अनुभव रखने वाले रिसर्चर और आरटीआई ऐक्टिविस्ट साबिर अहमद खुद को 'जमीनी शोधकर्ता' बताते हैं। उन्होंने खास तौर पर बताया कि टीम के सदस्यों को अर्थशास्त्र, सांख्यिकी, कंप्यूटर विज्ञान, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन लर्निंग और लार्ज लैंग्वेज मॉडल में विशेषज्ञता है। कुछ एसोसिएट हैं, कुछ इंटर्न, कुछ छात्र तो कुछ वॉलंटियर रिसर्चर।

आपको कब पता चला कि एसआईआर ने चुनिंदा तौर पर मुसलमानों को निशाना बनाया है?

7.04 करोड़ वोटर वाली दिसंबर 2025 की मसौदा सूची संदिग्ध नहीं थी। इसमें जुलाई 2025 की सूची से तकरीबन सात फीसद वोटरों को हटा दिया गया था, जो दूसरे राज्यों और पश्चिम बंगाल की आबादी के लिहाज से सही था। कोलकाता के भवानीपुर निर्वाचन क्षेत्र में, जहां से ममता बनर्जी चुनाव लड़ रही हैं, एएसडीडी श्रेणी के तहत लगभग 22 फीसद वोटरों को हटा दिया गया था। हटाए गए लोगों में हिन्दू और इस निर्वाचन क्षेत्र में 20 फीसद मुस्लिम, दोनों थे।

मुस्लिम-बहुल सीमावर्ती जिलों में भी यही स्थिति रही। हालांकि ग्रामीण बंगाल में, सूची से हटाए गए लोगो में महिलाओं की संख्या सबसे ज्यादा थी, जिन्हें 'स्थानांतरित' दिखाया गया था। चुनाव आयोग का सॉफ्टवेयर शादी के बाद महिलाओं के बदले उपनामों के कारण उनमें से बड़ी संख्या को ट्रैक नहीं कर पाया। हालांकि, चुनाव आयोग द्वारा 'तार्किक विसंगति' श्रेणी शुरू करने के बाद यह पैटर्न बदल गया; इस श्रेणी के तहत 1.32 करोड़ ऐसे वोटरों को चिह्नित किया गया, जो एनुमरेशन फॉर्म भरने, दस्तावेज जमा करने और 2002 की मतदाता सूची में अपना नाम दर्ज कराने के बाद मसौदा सूची में शामिल हो गए थे।

तो, मुर्शिदाबाद और मालदा जैसे सीमावर्ती जिलों के मुसलमान खुद को मैप कर पाए?

हां। असल में, इन जिलों में अनमैप्ड लोगों की दर राज्य के औसत से कम थी- महज एक या दो फीसद, और कोलकाता और यहां तक कि मतुआ बेल्ट उत्तरी 24 परगना की तुलना में तो काफी कम थी जहां अनमैप्ड लोगों की संख्या 12 से 14 फीसद थी। कालियाचक (मालदा) में जहां 1 अप्रैल को नाम हटाने का विरोध कर रही भीड़ ने सात न्यायिक अधिकारियों को नौ घंटे तक बंधक बनाए रखा था, अनमैप्ड लोगों की दर 0.58 फीसद थी। एएसडीडी श्रेणी के तहत नाम हटाए जाने के मामले शायद कोलकाता और उसके आस-पास के इलाकों में ज्यादा रहे, जहां बिहार और उत्तर प्रदेश से आए मजदूर रहते हैं।

पहले दौर के बाद एएसडीडी डेटा ने भी भाजपा के इस दावे की पुष्टि नहीं की कि बांग्लादेश से घुसपैठ के कारण पश्चिम बंगाल की डेमोग्राफी बदल रही है, या फिर यह कि यह राज्य नकली आधार, पैन और वोटर कार्ड जारी करने का केन्द्र बन गया है। नए एक्टिव पैन, आधार और वोटर कार्ड पर केन्द्र सरकार का डेटा भी लगभग सात फीसद के ट्रेंड वैल्यू के अनुरूप था, जो भारत की आबादी में पश्चिम बंगाल की हिस्सेदारी है।

'तार्किक विसंगति' श्रेणी लाने के बाद क्या हुआ?

इसके चलते एएसडीडी श्रेणी के तहत हटाए गए नामों के अलावा 60 लाख और नाम संदिग्ध माने गए और उन्हें 'जांच के दायरे में' डाल दिया गया। हमने अपने अध्ययन में पाया कि 'तार्किक विसंगति' का असर अन्य लोगों की तुलना में मुसलमानों पर कहीं ज्यादा पड़ा। हालांकि जब तक चुनाव आयोग पूरी जानकारी नहीं देता है, इसे महज अंदाजा ही माना जाएगा कि एआई सॉफ्टवेयर में बाहरी सलाहकारों के जरिये किसी तरह की कोई गड़बड़ी की गई हो। हमें ऐसा इसलिए लगता है, क्योंकि चुनाव आयोग के जिन ज्यादातर अधिकारियों से हमारी बातचीत हुई, वे डिजिटल मामलों में अनपढ़-से लगे।

'तार्किक विसंगति' की वजह से हटाए गए मुसलमानों का प्रतिशत बढ़कर 52 फीसद तक पहुंच गया। कोलकाता पोर्ट, मटियाबुरुज और बालीगंज जैसे निर्वाचन क्षेत्रों में, 'तार्किक विसंगति' वाली सूची में 80 से 90 फीसद नाम मुसलमानों के ही हैं। अब तक, हमें पश्चिम बंगाल में ऐसा एक भी निर्वाचन क्षेत्र नहीं मिला जहां मुसलमानों के नामों में पाई गई 'तार्किक विसंगति' का प्रतिशत, उस क्षेत्र में मौजूद कुल मुस्लिम मतदाताओं के प्रतिशत से कम हो।

क्या इसके कुछ उदाहरण दे सकते हैं?

हां। राज्य सरकार के कर्मचारी मोहम्मद अयूब के पास सभी जरूरी दस्तावेज थे- जन्म प्रमाण पत्र, पासपोर्ट, पैन और आधार कार्ड। उनका मामला पड़ताल के लिए इसलिए चुना गया कि 2002 में उनका नाम 'अयूब मोहम्मद' के तौर पर दर्ज था। अब उन्हें अपीलीय ट्रिब्यूनल के सामने पेश होना पड़ेगा, क्योंकि सुनवाई के चरण में उनका नाम ठीक नहीं किया गया था। दिक्कत यह है कि मतदान के पहले चरण में 10 दिन भी नहीं रह गए हैं और ये ट्रिब्यूनल काम नहीं कर रहे हैं।

क्या आपके पास यह शक करने की कोई वजह है कि चुनाव आयोग के ये कदम जान-बूझकर उठाए गए या उनमें कोई राजनीतिक रंग था?

हम डेटा पर काम करते हैं और राजनीति या मनोविज्ञान में नहीं पड़ते। फिर भी, कई बातों ने हमें हैरान किया, जिनमें राज्य सरकार के अधिकारियों पर चुनाव आयोग का अविश्वास भी शामिल है। चुनाव आयोग द्वारा हजारों माइक्रो-ऑब्जर्वर तैनात किए जाने से हमें हैरानी हुई।

इसके अलावा, चुनाव आयोग शोधकर्ताओं के लिए डेटा तक पहुंच मुश्किल क्यों करेगा? एएसडीडी सूची का विश्लेषण किया जा सकता था। बाद की सूचियों के लिए, आयोग ने डेटा को स्कैन किए गए पीडीएएफ फॉर्मेट में जारी करने का तरीका अपनाया, जिसमें नामों के ऊपर 'निर्णय प्रक्रियाधीन' की मुहर लगी होती थी। हमें हर निर्वाचन क्षेत्र के लिए 8,000-10,000 पीडीएएफ पेज डाउनलोड करने पड़े और डेटा को इस्तेमाल लायक बनाने से पहले, उन पर लगी मुहरों को हाथ से हटाना पड़ा। कई मामलों में तो पूरक सूचियों की संख्या कभी खत्म न होने वाली लग रही थीं; कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में तो नाम हटाने और जोड़ने के लिए ऐसी 17 सूचियां तक जारी की गईं।

सुप्रीम कोर्ट के साफ निर्देशों के बावजूद, चुनाव आयोग ने अब तक 'तार्किक रूप से असंगत' लिस्ट जारी नहीं की है। वेबसाइट पर मौजूद सूचियां बेतरतीब लगती हैं- कुछ अंग्रेजी में हैं, तो कुछ बांग्ला में। क्या कोई खास वजह है कि कोलकाता के बेहाला की सूची अंग्रेजी में है, जबकि कोलकाता के ही जादवपुर की सूची बांग्ला में? सूची आधी रात को- रात 11 या 12 बजे- ही क्यों प्रकाशित की जाती हैं? सूची अपलोड होते ही चुनाव आयोग के सर्वर क्यों बंद हो जाते हैं? ■

नियम तोड़ो > जमीन हड़पो > लोगों को बेदखल करो

रश्मि सहगल

जमीन कब्जाने के लिए नियम तोड़ना अपवाद नहीं रहा। भाजपा शासित राज्यों में तो यह आम बात है। इसका सबसे ज्यादा शिकार वे आदिवासी समुदाय हैं, जिनका बॉक्साइट, लौह अयस्क और कोयला भरे जंगलों पर मूल अधिकार है। ताजा मामला ओडिशा में कालाहांडी और रायगड़ा जिलों के बीच सिजिमाली का है। जैव-विविधता से भरपूर इन पहाड़ियों में 7 अप्रैल को 'वेदांता' द्वारा प्रस्तावित बॉक्साइट खनन का विरोध कर रहे ग्रामीण आदिवासियों को पुलिस कार्रवाई में चोटें आईं। लंबे समय से आदिवासियों के 'जल, जंगल, जमीन' के अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ते लिंगराज आजाद और सुरेश संग्राम को गिरफ्तार कर उन पर साजिश और राजद्रोह के आरोप जड़ दिए गए।

ओडिशा के प्रथम आदिवासी मुख्यमंत्री मोहन चरण मांझी भी भाजपा शासित राज्यों की चिरपरिचित 'गिरफ्तारी और विरोधियों को निशाना बनाने' की रीति पर हैं। इस इलाके में वर्षों से काम कर रहीं 'एशिया पैसिफिक फोरम ऑन वीमेन्स लॉ एंड डेवलपमेंट' की कार्यकर्ता सरन्या नायक कहती हैं, "पांच गांव इसका सबसे ज्यादा खामियाजा भुगत रहे हैं, क्योंकि वही विरोध का केन्द्र हैं। सजाबारी और कांतमाल में तो महिलाओं को घर से बाहर निकलने की भी इजाजत नहीं है। कई आरटीआई से मिली जानकारी से पता चलता है कि ग्राम पंचायत के सहमति पत्रों पर किए गए हस्ताक्षर जाली थे। स्थानीय प्रशासन ईस्ट इंडिया कंपनी के गुर्गों की तरह व्यवहार कर रहा है।"

उत्तराखंड के घुरेहटा गांव में मिली जमीन का दौरा करते आचार्य बालकृष्ण जिसे राज्य सरकार ने पतंजलि समूह को दिया है

*

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का संसदीय क्षेत्र वाराणसी भी इस मामले में पीछे नहीं। अगस्त 2023 में प्रशासन ने गंगा किनारे 12.5 एकड़ की एक ऐतिहासिक संपत्ति कब्जाने के लिए राजघाट स्थित 'सर्व सेवा संघ' परिसर पर धावा बोल दिया। जमीन 1960 में तत्कालीन रेलमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के कार्यकाल में हस्तांतरित की गई थी, जिसकी 'सेल डीड' आज भी वहीं सुरक्षित है। दशकों तक यह परिसर सर्व सेवा संघ के प्रकाशन विभाग के मुख्य केन्द्र के रूप में गांधीवादी विचारों का प्रचार-प्रसार करता रहा। लेकिन, एक कार्रवाई में सब मिटा दिया गया।

पिछले दो सालों से, वाराणसी के 11 गांवों में किसान 'कृषि द्वार योजना' के तहत 800 एकड़ की कीमती कृषि योग्य जमीन के जबरन अधिग्रहण का विरोध कर रहे हैं। उनकी जमीन, जो 1952 में वाराणसी के तत्कालीन विधायक राज नारायण द्वारा स्थापित एक किसान सहकारी समिति का हिस्सा थी, अब निजी बिल्डरों को सौंपी जा रही है। कई प्रमुख किसान नेता गिरफ्तार हो गए लेकिन किसान अब भी अडिग हैं: "हम जान दे देंगे, लेकिन अपनी जमीन नहीं देंगे।"

रिपोर्ट बताती हैं कि अयोध्या में राम मंदिर परिसर निर्माण के लिए 4,000 से ज्यादा घर और दुकानें तोड़ी गईं, जिससे 50,000 से ज्यादा लोग बेघर हो गए। कितनों को मुआवजा तक नहीं मिला। स्थानीय व्यापारियों के एक संगठन के अध्यक्ष नंदलाल गुप्ता कहते हैं, "कई दुकानदार अब गुजारा करने के लिए मजदूरी या ऑटो-रिक्शा चालक के तौर पर काम कर रहे हैं।"

भाजपा के समर्थन वाली 'टाइम सिटी मल्टी स्टेट कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी' ने सरयू नदी के आस-पास जमीन खरीदी और उसे अडानी और लोढ़ा ग्रुप को तीन से पांच गुना ज्यादा कीमत पर बेच दिया। किसानों का कहना है कि उन पर जबरदस्ती करके जमीन बिकवा दी गई। विपक्षी नेताओं का आरोप है कि 2 करोड़ रुपये में खरीदा गया एक प्लॉट, दस मिनट के अंदर ही 'श्री राम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट' को 18.5 करोड़ रुपये में दोबारा बेच दिया गया। 'लोकशक्ति जन परिषद' के प्रमुख अफ़लातून कहते हैं, "अडानी, अंबानी और पतंजलि की अगुवाई वाले नए जमींदारों ने पुराने जमींदारों की जगह ले ली है।"

मध्य प्रदेश में, जहां भाजपा 'जनजाति गौरव दिवस' का जश्न मना रही है, कांग्रेस के पूर्व विधायक बाला बच्चन कहते हैं, "वे आदिवासियों की जमीनें हड़पने में लगे हैं। भाजपा का यही असली चेहरा है।"

बच्चन, गोंड आदिवासी महकम सिंह की तरफ से बोल रहे थे, जिन्होंने अपने भाई के साथ मिलकर 2021 में सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट की अदालत में एक केस दायर किया था। उन्होंने भाजपा के चार बार के विधायक केदारनाथ शुक्ल और उनके भाई मारकंडे शुक्ल पर आरोप लगाया कि उन्होंने सीधी जिले के हरबरो गांव में उनकी 17.41 एकड़ जमीन के कागजात में हेरा-फेरी कर उसे हड़प लिया।

जमीन कब्जाने में सबसे आगे पतंजलि समूह है। उसे उत्तराखंड में सस्ती दरों पर जमीन दी गई। असम में 1,200 एकड़ जमीन बिल्कुल मुफ्त। हिमाचल में, पिछली भाजपा सरकार ने सोलन में 30 एकड़ का प्लॉट, 33 साल की लीज पर, महज एक रुपये में दिया था

2025 की रिपोर्ट बताती हैं कि भाजपा नेताओं ने छतरपुर और विदिशा में लगभग 15,000 एकड़ सरकारी जमीन पर कब्जा किया। यह वही जमीन थी जिसे पहले 'माफिया-विरोधी अभियान' के तहत खाली कराया गया था। खबरों के मुताबिक, इस क्षेत्र को अब निजी बागानों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है और आवासीय कॉलोनियों के लिए डेवलपर्स को बेचा जा रहा है।

असम में लगभग दो दर्जन सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को एक-एक कर बंद करने के बाद, हिमंत बिस्वा सरमा सरकार आदिवासी समुदायों की कीमत पर, कुछ चुनिंदा कॉरपोरेट घरानों के साथ खुलेआम साझेदारी कर रही है।

राजनीतिक संरक्षण की बात तब खुलकर जाहिर हो गई, जब अंबानी समूह को कार्बी आंगलोंग में 1,000 मेगावाट का सोलर पावर प्रोजेक्ट आवंटित हुआ। इसके लिए 6,000 एकड़ जमीन चाहिए थी और इसे एशियन डेवलपमेंट बैंक से फंड मिलना था। कड़े विरोध से एडीबी ने आखिरकार अपना 434.25 मिलियन डॉलर का लोन वापस ले लिया। प्रोजेक्ट रुका हुआ है। एक और मामला कोकराझार के परबतझोरा सब-डिविजन में अडानी समूह को 3,200 मेगावाट के थर्मल पावर प्लांट के लिए 1,134 एकड़ जमीन का आवंटन था। इसका भी विरोध हो रहा है।

सरमा सरकार ने नॉर्थ कछार हिल्स ऑटोनॉमस काउंसिल (डिमा हसाओ जिला) में कोलकाता की एक निजी कंपनी, महाबल सीमेंट प्राइवेट लिमिटेड को 3,000 बीघा जमीन आवंटित कर दी है। इस आवंटन पर गुवाहाटी हाईकोर्ट के एक जज ने पूछा कि क्या किसी निजी कंपनी को पूरा का पूरा जिला सौंप देना "किसी तरह का मजाक" है।

तीनों ही आवंटन छठी अनुसूची के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन हैं, जिसके तहत ऐसे किसी भी हस्तांतरण से पहले आदिवासी समुदायों से परामर्श करना अनिवार्य है।

राजस्थान में उपमुख्यमंत्री दीया कुमारी पर जयपुर में सरकारी जमीन पर कब्जाने का आरोप है, जिसमें जलेबी चौक इलाके के ऐतिहासिक बंगले और संपत्तियां शामिल हैं। राजस्थान उच्च न्यायालय में दायर एक याचिका में केन्द्रीय मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत पर जोधपुर में 50 करोड़ रुपये की सार्वजनिक जमीन पर कब्जा करने के लिए जमीन के रिकॉर्ड में हेराफेरी का आरोप लगा है। यहां तक कि लोकसभा अध्यक्ष ओम बिरला को भी नहीं बख्शा गया है। रिकॉर्ड दिखाते हैं कि उन्होंने और उनके परिवार ने वन्यजीव संरक्षण अधिनियम का उल्लंघन करते हुए सुथला अभयारण्य क्षेत्र के भीतर जमीन खरीदी, जो संरक्षित क्षेत्रों में जमीन की बिक्री पर रोक लगाता है।

गुजरात में भाजपा के पूर्व विधायक राजेंद्रसिंह चावड़ा तो हिम्मतनगर (साबरकांठा) में सरकारी कब्जे वाली एक पूरी बंजर पहाड़ी ही कब्जा ली और उसे पांच लोगों के नाम पर रजिस्टर करवा दिया; जिनमें उनकी बेटी पायल और भाभी दीक्षितबेन भी शामिल हैं।

महाराष्ट्र में भाजपा, शिवसेना (एकनाथ शिंदे गुट) और एनसीपी (अजित पवार गुट) वाला 'महायुति गठबंधन' कई हाई-प्रोफाइल जमीन हड़पने के घोटालों में बदनाम है। पूर्व उपमुख्यमंत्री अजित पवार के बेटे पार्थ पवार पर आरोप है कि उन्होंने पुणे में महार समुदाय के लिए आरक्षित 40 एकड़ की कीमती सरकारी जमीन पर कब्जे की कोशिश की थी, जिसकी बाजार कीमत 1,800 करोड़ रुपये थी। पवार ने एक कंपनी बनाकर 300 करोड़ रुपये में जमीन का सौदा रजिस्टर करवाया। 21 करोड़ रुपये की स्टांप ड्यूटी बनती थी, लेकिन सिर्फ 500 रुपये जमा किए। मामला खुलने के बाद सौदा रद्द कर दिया गया।

उत्तराखंड जैसे छोटे पहाड़ी राज्य में तो चारों तरफ से जमीन हड़पने के घोटाले सामने आ रहे हैं। सबसे आगे पतंजलि समूह है; जिसे न सिर्फ उत्तराखंड में अत्यंत सस्ती दरों पर जमीन दी गई, बल्कि 2014 में असम में भी 1,200 एकड़ जमीन बिल्कुल मुफ्त दी गई थी।

हिमाचल में, पिछली भाजपा सरकार ने पतंजलि को सोलन में 30 एकड़ का एक प्लॉट, 33 साल की लीज पर, महज एक रुपये की नाममात्र की कीमत पर दिया था। मध्य प्रदेश सरकार ने 40 एकड़ जमीन का एक प्लॉट 88 प्रतिशत की छूट पर दिया था; जबकि नागपुर में 600 एकड़ जमीन 75 प्रतिशत की छूट पर दी गई थी। ■

79वें हिमाचल दिवस के अवसर पर माननीय मुख्यमंत्री का विशेष लेख

सुदृढ़ ग्रामीण अर्थव्यवस्था से आत्मनिर्भरता और समृद्धि की राह पर हिमाचल

प्रिय प्रदेशवासियो, उन्नासीवें हिमाचल दिवस के शुभ अवसर पर मैं आप सभी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं देता हूं। वर्ष 1948 में आज ही के दिन हमारा यह सुंदर प्रदेश 30 छोटी-बड़ी पहाड़ी रियासतों के विलय से चीफ कमिशनर्स प्रोविंस के रूप में अस्तित्व में आया था।

आज के इस पावन अवसर पर मैं हिमाचल निर्माता और प्रदेश के पहले मुख्यमंत्री डॉ. यशवन्त सिंह परमार सहित उन सभी महान विभूतियों के प्रति सम्मान व्यक्त करता हूं, जिन्होंने हिमाचल के गठन में बहुमूल्य योगदान दिया। मैं, वीर भूमि हिमाचल के उन स्वतंत्रता सेनानियों और बहादुर सैनिकों को भी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं, जिन्होंने देश की एकता और अखण्डता बनाए रखने के लिए सर्वोच्च बलिदान दिया। साथ ही, मैं प्रदेश के मेहनती, ईमानदार और शान्तिप्रिय लोगों का विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूं जिनके निरन्तर प्रयासों से हमारे प्रदेश ने विकास के उच्च आदर्श स्थापित किए हैं।

हमारी सरकार ने 11 दिसम्बर, 2022 को जनसेवा का उत्तरदायित्व संभाला और मुझे मुख्यमंत्री के रूप में आपकी सेवा करने का सौभाग्य मिला। व्यवस्था परिवर्तन के माध्यम से हमारी सरकार हिमाचल प्रदेश को वर्ष 2027 तक आत्मनिर्भर और 2032 तक देश का सबसे समृद्ध राज्य बनाने की दिशा में पूरे समर्पण के साथ आगे बढ़ रही है।

प्रदेश सरकार ने विधानसभा चुनाव के दौरान दी गई सभी दस गारंटियों को पूरा कर आपसे किया वायदा निभाया है। हमने 1.36 लाख कर्मचारियों को पहली ही कैबिनेट बैठक में पुरानी पेंशन का लाभ प्रदान किया।

आर्थिक, राजनीतिक और प्रदेश के इतिहास की सबसे बड़ी प्राकृतिक आपदा की गम्भीर चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए हमारी सरकार ने प्रदेश के विकास और जनकल्याण को नई दिशा देने का कार्य किया है। हमारे सामने एक बड़ा वित्तीय संकट खड़ा हुआ है जिसका कारण पिछली सरकार से विरासत में मिला 76,633 करोड़ रुपये का कर्ज और कर्मचारियों की देनदारियों के रूप में लगभग 10 हजार करोड़ रुपये का वित्तीय बोझ है।

इस आर्थिक बोझ के बीच, प्रदेश के लोगों के सामने राजस्व घाटा अनुदान बंद होना एक और चुनौती है। 16वें वित्त आयोग ने 1952 से मिल रहे राजस्व घाटा अनुदान को समाप्त करने की सिफारिश की जिसे केन्द्र सरकार ने अमल में लाया है। यह अनुदान हिमाचल को वर्ष 2026-31 तक की अवधि के लिए मिलना था। इसके बंद होने से हमारे प्रदेश को प्रति वर्ष औसतन 8 से 10 हजार करोड़ रुपये यानी पांच साल में लगभग 50 हजार करोड़ का नुकसान होगा। वहीं, अगर पिछली भाजपा सरकार की बात करें तो पांच वर्षों में उसको आरडीजी के रूप में 47 हजार करोड़ रुपये तथा जीएसटी प्रतिपूर्ति के रूप में 13 हजार करोड़ रुपये प्राप्त हुए थे। पिछली सरकार को जहां 60 हजार करोड़ रुपये मिले वहीं हमारी सरकार को महज 17 हजार करोड़ ही मिले।

आरडीजी बंद होने के कारण हमें पिछले साल के मुकाबले इस वित्त वर्ष तीन हजार करोड़ कम का बजट प्रस्तुत करना पड़ा। आज हमारे सामने चुनौतियां बड़ी हैं लेकिन हमारा दृढ़ संकल्प है कि हम इन चुनौतियों से लड़ेंगे और नए संसाधनों के सृजन से प्रदेश को विकास और समृद्धि की राह पर आगे ले जाएंगे।

इस वित्त वर्ष के लिए मैंने जो बजट प्रस्तुत किया है, उसमें आम लोगों और मध्यम वर्ग पर कोई बोझ नहीं डाला गया है। यह प्रदेश का पहला ऐसा बजट है जिसमें किसानों, बागवानों, पशुपालकों, भेड़ पालकों और मछुआरों को केंद्र में रखकर लाभ दिया गया है। प्रदेश के इतिहास में पहली बार हमारी सरकार ने गांव के लोगों तक पैसा पहुंचाने के बारे में सोचा। व्यवस्था परिवर्तन के माध्यम से हमने दूध उत्पादकों को लाभ प्रदान किए हैं।

हमारी सरकार गाय और भैंस के दूध की खरीद पर पशुपालकों को देश में सबसे अधिक समर्थन मूल्य प्रदान कर रही है। पिछले तीन वर्षों में गाय के दूध पर समर्थन मूल्य 32 से बढ़ाकर 61 रुपये प्रति लीटर और भैंस के दूध पर 47 से बढ़ाकर 71 रुपये प्रति लीटर किया गया है।

हिमाचल प्रदेश देश का पहला राज्य बना है जहां प्राकृतिक खेती पद्धति से उगाए गेहूं, मक्का और हल्दी के लिये समर्थन मूल्य दिया गया है। किसानों को और लाभ पहुंचाने के लिए हमने गेहूं के न्यूनतम समर्थन मूल्य को 60 रुपये से बढ़ाकर 80 रुपये प्रति किलो और मक्की के न्यूनतम समर्थन मूल्य को 40 रुपये से बढ़ाकर 50 रुपये प्रति किलो करने का फैसला किया है। कच्ची हल्दी पर समर्थन मूल्य 90 रुपये से बढ़ाकर 150 रुपये प्रति किलो करने का निर्णय लिया गया है। चंबा जिले की पांगी घाटी में प्राकृतिक रूप से उगाई जा रही जौ की खरीद पर समर्थन मूल्य को 60 रुपये से बढ़ाकर 80 रुपये प्रति किलो किया जाएगा। प्रदेश में पहली बार अदरक की खरीद पर 30 रुपये प्रति किलो समर्थन मूल्य प्रदान करने का भी फैसला लिया गया है।

मछली पालकों के लिए प्रदेश सरकार ने इस साल जलाशयों की मछली पर न्यूनतम समर्थन मूल्य देने का निर्णय लिया है। हमने यह भी फैसला किया है कि बरसात के मौसम में जब मछली पकड़ने पर प्रतिबंध रहता है, उस दौरान मछुआरों को 3,500 रुपये प्रति वर्ष की एकमुश्त सम्मान निधि प्रदान की जाएगी, ताकि वे अपना जीवन-यापन बेहतर ढंग से कर सकें। इसके अलावा, जलाशयों से पकड़ी गई मछलियों पर रॉयल्टी दर को पहले 15 प्रतिशत से घटाकर 7.5 प्रतिशत किया और इस वर्ष इसे और घटाकर एक प्रतिशत करने का निर्णय लिया गया है।

हमने देश में पहली बार बागवानी नीति लागू करने का फैसला किया है जिससे 82 हजार 500 लोगों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रोगार के अवसर प्राप्त होंगे। सेब के लिए यूनिवर्सल कार्टन के इस्तेमाल को कानूनी रूप से अनिवार्य बनाकर हजारों सेब उत्पादकों को बेहतर आमदनी सुनिश्चित की गई है।

राज्य सरकार विश्व स्तर की स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। 15 से 20 वर्ष पुरानी मशीनों और उपकरणों को बदलने तथा दिल्ली एम्स के स्तर की बेहतरीन चिकित्सा सेवाएं एवं उपकरण उपलब्ध कराने के लिए 3 हजार करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं।

राज्य में पहली बार रोबोटिक सर्जरी की शुरुआत स्वास्थ्य क्षेत्र में एक क्रांतिकारी पहल है। यह सुविधा प्रदेश के चार चिकित्सा महाविद्यालयों में शुरू की जा चुकी है और जल्दी ही हमीरपुर चिकित्सा महाविद्यालय में भी उपलब्ध होगी। हम प्रदेश में अत्याधुनिक ऑटोमेटेड लैब की सुविधा प्रदान करने जा रहे हैं जिसके माध्यम से कई प्रकार के टेस्ट खून के एक ही सैंपल से हो जाएंगे तथा इनकी रिपोर्ट भी सटीक होगी।

लोगों को उनके घर के नजदीक ही बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं देने के लिए हमारी सरकार ने आदर्श स्वास्थ्य संस्थान बनाए हैं, जहां 6-6 विशेषज्ञ चिकित्सक सेवाएं दे रहे हैं। आईजीएमसी शिमला में पैट स्कैन की सुविधा शुरू हो चुकी है, जबकि टांडा चिकित्सा महाविद्यालय में यह सुविधा जल्दी उपलब्ध करवाई जाएगी। यह स्वास्थ्य क्षेत्र में हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि अब प्रदेश के लोगों को कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों के टेस्ट के लिए बाहरी राज्यों में जाने की जरूरत नहीं रहेगी। सभी चिकित्सा महाविद्यालयों में पीजी के 314 अतिरिक्त पदों को भरने की प्रक्रिया शुरू की जा चुकी है। इसके अलावा डॉक्टरों, पैरामेडिकल स्टाफ और टेक्निशियन के खाली पदों को भी मिशन मोड पर भरा जा रहा है।

ठाकुर सुखविन्द्र सिंह सुक्खू
मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश

शिक्षा क्षेत्र के युक्तिकरण और विद्यार्थियों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए हमारी सरकार ने ऐतिहासिक कदम उठाए हैं। इनके कारण शिक्षा क्षेत्र में हमारी रैंकिंग देश भर में पांचवें स्थान पर पहुंच गई है, जो पूर्व भाजपा सरकार के समय 21वें स्थान पर फिसल गई थी। हमारे लिए गौरव की बात है कि हिमाचल प्रदेश पूर्ण साक्षर राज्य बन गया है।

अपनी चुनावी गारंटी को पूरा करते हुए हमने सभी सरकारी स्कूलों में पहली कक्षा से अंग्रेजी माध्यम शुरू किया है ताकि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों में आत्मविश्वास की कमी न रहे और वे भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार हो सकें। प्रदेश के 151 सरकारी स्कूलों को सीबीएसई से संबद्ध करने का निर्णय लिया गया है जिसके कारण इन स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। हमने फैसला किया है कि सभी सीबीएसई स्कूलों में मेडिकल, नॉन मेडिकल और कॉमर्स विषय पढ़ाए जाएंगे। हमने यह फैसला भी किया है कि एक स्कूल में सभी बच्चों से एक समान फीस ली जाएगी ताकि विद्यार्थियों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव न हो सके।

प्रदेश सरकार ने प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र में अत्याधुनिक सुविधाओं वाले राजीव गांधी राजकीय आदर्श डे-बोर्डिंग विद्यालय स्थापित करने की पहल की है। डॉ. वाई. एस. परमार विद्यार्थी ऋण योजना शुरू कर युवाओं को उच्च और व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक प्रतिशत ब्याज पर 20 लाख रुपये तक की ऋण सुविधा प्रदान की जा रही है, जिसकी गारंटी प्रदेश सरकार द्वारा दी जाती है। इस योजना का लाभ लेने के लिए परिवार की आय को चार लाख से बढ़ाकर 12 लाख रुपये किया गया है।

हमने इन्दिरा गांधी सुख शिक्षा योजना को विस्तार देते हुए निर्णय लिया है कि पात्र लाभार्थियों के बच्चे, जो प्रदेश के बाहर प्रतिष्ठित सरकारी व्यावसायिक संस्थानों में प्रवेश पाएंगे, उनकी होस्टल फीस से लेकर पढ़ाई का पूरा खर्च राज्य सरकार वहन करेगी। मुख्यमंत्री सुख-आश्रय योजना के अंतर्गत 6,000 अनाथ बच्चों को 'चिल्ड्रन ऑफ दि स्टेट' का दर्जा प्रदान कर प्रदेश सरकार इनकी शिक्षा, स्टार्ट-अप आरंभ करने, घर बनाने के लिए भूमि एवं धनराशि सहित अन्य सुविधाएं प्रदान करने की जिम्मेदारी उठा रही है।

कांगड़ा जिला के लुथान में लगभग 93 करोड़ रुपये की लागत से मुख्यमंत्री आदर्श ग्राम सुख-आश्रय परिसर का निर्माण किया जा रहा है जिसमें 400 आश्रितों के लिए आधुनिक सुविधाओं से युक्त आवास उपलब्ध होगा। इसके अलावा, सोलन जिले के कंडाघाट में दिव्यांगजनों के लिए उत्कृष्टता केंद्र का निर्माण किया जा रहा है जहां 27 वर्ष तक की आयु के 300 दिव्यांग बच्चों और व्यस्कों को आवास, उच्च शिक्षा के अवसर और कौशल विकास जैसी सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

राजीव गांधी वन संवर्द्धन योजना के अंतर्गत इस साल महिला मंडलों, युवक मंडलों और अन्य स्वयं सहायता समूहों को प्रति हेक्टेयर 1.20 लाख रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की जाएगी। हम 'मिशन 32 प्रतिशत' योजना भी शुरू करने जा रहे हैं जिसके अंतर्गत प्रदेश के हरित आवरण को 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर वर्ष 2030 तक 32 प्रतिशत करने के लक्ष्य से कार्य किया जाएगा।

हमारी सरकार ने अगले दो वर्षों में 500 मेगावाट सौर ऊर्जा परियोजनाएं स्थापित करने का लक्ष्य रखा है।

हमने करुणामूलक रोजगार नीति में संशोधन कर प्रति परिवार आय की पात्रता को 2.50 लाख रुपये से बढ़ाकर तीन लाख रुपये किया है ताकि और अधिक पात्र युवाओं को लाभान्वित किया जा सके। पिछले तीन वर्षों में सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना के तहत 99,799 नए मामले मंजूर किए गए हैं। हमारे दिव्यांग भाई-बहनें भी आत्मसम्मान के साथ जीवन-यापन कर सकें इसको ध्यान में रखते हुए शत-प्रतिशत दिव्यांगता वाले व्यक्ति के लिए सामाजिक सुरक्षा पेंशन को 1700 रुपये से बढ़ाकर 3,000 रुपये प्रतिमाह करने का फैसला किया गया है। बिजली उपभोक्ताओं को बड़ी राहत प्रदान करते हुए हर महीने 125 यूनिट तक घरेलू बिजली उपभोक्ताओं के लिए शून्य बिल योजना जारी रखने का निर्णय लिया गया है जबकि 126 से 300 यूनिट तक एक रुपये 72 पैसे प्रति यूनिट की सब्सिडी लागू होगी।

हमने पुरानी बीपीएल सूची को बदले बिना एक लाख अति गरीब परिवारों को आर्थिक सहायता देने के लिए 'अपना परिवार, सुखी परिवार' योजना शुरू कर परिवारों को 300 यूनिट तक मुफ्त बिजली देने का निर्णय लिया है। इन परिवारों की महिलाओं को इन्दिरा गांधी प्यारी बहना सुख सम्मान निधि योजना के अंतर्गत 1500 प्रतिमाह की सम्मान राशि भी दी जाएगी।

बीपीएल परिवारों का सर्वेक्षण करने का कार्य जारी है और अब तक प्रदेश में 1,10,367 परिवारों को बीपीएल परिवार अधिसूचित किया जा चुका है। 59 वर्ष से अधिक आयु की 2.82 लाख महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा पेंशन भी अप्रैल 2024 से बढ़ाकर 1500 रुपये की गई है।

केन्द्र सरकार ने मनरेगा योजना को बंद कर इस योजना की मूल भावना के साथ खिलवाड़ किया है। हमारी सरकार ने मनरेगा दिहाड़ी में ऐतिहासिक वृद्धि कर इसे 247 रुपये बढ़ाकर 320 रुपये किया है जो प्रदेश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है।

प्रदेश में पर्यटन की अपार संभावनाओं को देखते हुए प्राकृतिक, धार्मिक, साहसिक, आध्यात्मिक और स्वास्थ्य पर्यटन को बड़े स्तर पर बढ़ावा दिया जा रहा है। कांगड़ा जिला को हिमाचल की पर्यटन राजधानी के रूप में विकसित किया जा रहा है। कांगड़ा हवाई अड्डे के विस्तार के लिए भूमि अधिग्रहण का कार्य शुरू हो चुका है। कांगड़ा जिले में देहरा उप-मण्डल के बनखंडी में एक बड़ा जूलोजिकल पार्क निर्मित किया जा रहा है। प्रदेश के प्रमुख धार्मिक स्थलों ज्वालामुखी और नैना देवी में धार्मिक पर्यटन को बढ़ाने और नई अधोसंरचना निर्माण के लिए 150-150 करोड़ रुपये मंजूर किए गए हैं।

जनजातीय क्षेत्रों के विकास को राज्य सरकार विशेष प्राथमिकता दे रही है। लाहौल स्पीति जिले के स्पीति उप-मंडल की 18 साल से ऊपर सभी पात्र बहनों और माताओं को 1500 रुपये प्रतिमाह सम्मान राशि प्रदान की जा रही है। हमारी सरकार ने जनजातीय क्षेत्रों में 100 किलोवाट के एक मेगावाट परियोजनाओं के लिए पांच प्रतिशत ब्याज अनुदान का प्रावधान किया है। किन्नौर सहित प्रदेश के सभी बॉर्डर एरिया में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए हमारी सरकार ने बॉर्डर टूरिज्म की विशेष पहल की है। इस प्रयास के बेहतर परिणाम सामने आ रहे हैं और बॉर्डर एरिया में पर्यटकों की संख्या बढ़ी है।

हमारी सरकार अपने कर्मचारियों के सम्मान और सुरक्षा के प्रति हमेशा प्रतिबद्ध है और उनके सभी भुगतान समयबद्ध तरीके से किए जाएंगे। हमने निर्णय लिया है कि वर्ष 2016 से पूर्व के सभी पेंशनरों और पारिवारिक पेंशनरों का बकाया एरियर इसी वित्त में किया जाएगा। इसी तरह, एक जनवरी, 2016 से 31 दिसंबर, 2021 के दौरान सेवानिवृत्त हुए चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों का बकाया ग्रैच्यूटी और लीव एनकैशमेंट एरियर का पूरा भुगतान भी इसी वित्त वर्ष में कर दिया जाएगा। 31 मार्च, 2026 तक दो वर्ष का लगातार सेवाकाल पूरा करने वाले अनुबंध कर्मचारियों को नियमित करने का फैसला लिया गया है। कठिन वित्तीय स्थिति के बावजूद हमारी सरकार ने दिहाड़ीदारों की दिहाड़ी में 25 रुपये की वृद्धि की है तथा आउटसोर्स कर्मियों को न्यूनतम 13,070 रुपये प्रतिमाह दिए जाएंगे।

प्रदेश के युवाओं में नशे के बढ़ते चलन की चिन्ताजनक स्थिति को देखते हुए हमने सख्त कदम उठाए हैं और कानूनी प्रावधान लेकर भी आए हैं जिनमें कड़ी सजा और जुर्माने का प्रावधान है। इस सामाजिक बुराई से निपटने के लिए प्रदेश में चिट्टा मुक्त हिमाचल अभियायन शुरू किया गया है जिसमें युवाओं सहित समस्त प्रदेशवासियों का भरपूर सहयोग मिल रहा है। हम जल्दी ही 'खेलो इंडिया-चिट्टा मुक्त अभियान' शुरू करेंगे जो युवाओं को नशे की लत, विशेषकर चिट्टे से दूर रखने में हमारे प्रयासों को और बल देगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि प्रदेशवासियों के सहयोग से हम हिमाचल प्रदेश को आत्मनिर्भर और सबसे समृद्ध राज्य बनाने में सफल होंगे।

हिमाचल दिवस के अवसर पर मैं एक बार फिर आप सभी को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं देते हुए आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।

जय हिन्द, जय हिमाचल।

प्रदेशवासियों को 79वें
हिमाचल दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं

सुदृढ़ ग्रामीण अर्थव्यवस्था

» हिमाचल प्रदेश दूध पर न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) देने वाला पहला राज्य।
» गाय के दूध पर समर्थन मूल्य 61 रुपये और भैंस के दूध पर 71 रुपये प्रति लीटर।
» प्राकृतिक रूप से उगाए गए गेहूं का MSP 80 रुपये, मक्की का 50 रुपये और कच्ची हल्दी का 150 रुपये प्रति किलो।
» पांगी घाटी के किसानों द्वारा प्राकृतिक रूप से उगाए गए जौ का MSP 80 रुपये प्रति किलो।
» अदरक के लिए 30 रुपये प्रति किलो MSP तय।
» दूध उत्पादकों को प्रति माह मिल रहा 34 करोड़ रुपये का लाभ।
» एक वर्ष के भीतर दूध खरीद हुई दोगुनी, 2.70 लाख लीटर प्रतिदिन।

शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार

» 151 सरकारी स्कूलों में सीबीएसई पाठ्यक्रम शुरू, छात्र नामांकन में उल्लेखनीय वृद्धि।
» 99.30 प्रतिशत साक्षरता दर के साथ हिमाचल प्रदेश पूर्ण साक्षर राज्य बना।

वंचित वर्गों को सर्वोच्च प्राथमिकता

» मुख्यमंत्री सुख-आश्रय योजना ने 6 हजार अनाथ बच्चों के जीवन में भरे उम्मीदों के रंग।
» 'चिल्ड्रन ऑफ द स्टेट' को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करने पर लगभग 86 करोड़ रुपये व्यय।
» शत-प्रतिशत दिव्यांगजनों को अब प्रतिमाह 3 हजार रुपये पेंशन।

विश्व-स्तरीय स्वास्थ्य सेवाएं

» AIMSS चमियाणा, मेडिकल कॉलेज टांडा, आईजीएमसी, शिमला और नेरचौक मेडिकल कॉलेज में रोबोटिक सर्जरी शुरू।
» आईजीएमसी, शिमला में पेट-स्कैन और अत्याधुनिक 3 टेस्ला एमआरआई मशीन स्थापित।

मछुआरों को सम्मान

» मछुआरों को 3,500 रुपये प्रति वर्ष की एकमुश्त सम्मान निधि।
» जलाशयों से प्राप्त मछलियों का MSP 100 रुपये प्रति किलो, रॉयल्टी घटाकर 1 प्रतिशत।
» 6,000 से अधिक जलाशय मछुआरों को सीधा लाभ।

व्यवस्था परिवर्तन से आत्मनिर्भर होता हिमाचल

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश

RO No.: 0004/2026-2027(Display)

अलग-थलग क्यों पड़ा सुपरपावर अमेरिका?

इसराइल के इशारे पर नाच रहे ट्रम्प ने अमेरिका की साख मिट्टी में मिला दी और सहयोगी देशों ने भी उससे किनारा कर लिया है

अशोक स्वैन

बड़ी ताकतें कभी-कभी अपनी हद को लांघकर खुद को अलग-थलग कर लेती हैं। डॉनल्ड ट्रम्प के नेतृत्व वाले अमेरिका की अभी ऐसी ही स्थिति है। फिलिस्तीन से लेकर लेबनान और ईरान तक- लगभग हर मामले में बेंजामिन नेतन्याहू के साथ बिना सोचे-समझे खड़े होकर, ट्रम्प ने विश्व मामलों में अमेरिका की सर्वोच्च प्रतिष्ठा को सचमुच नुकसान पहुंचाया है। एक ढलते सुपरपावर के तौर पर, ट्रम्प का अमेरिका अब भी अपनी ताकत दिखाने की काबिलियत रखता है, लेकिन अब उसे वह सम्मान नहीं मिलता; वह आम सहमति नहीं बना पाता और संभवतः ईरान मामले में हाथ आई असफलता के बाद, अब वह लोगों में वैसा खौफ भी पैदा नहीं कर सकेगा जैसा कभी किया करता था।

फारस की खाड़ी के हालिया घटनाक्रम इस बदलाव को साफ तरीके से दिखाते हैं। इस्लामाबाद में बातचीत नाकाम होने के बाद, वॉशिंगटन ने ऐसे कदम उठाए हैं जिनसे दुनिया के सबसे अहम तेल, गैस और नाइट्रोजन कॉरिडोर में रुकावट आने और संघर्ष के मौजूदा सीमाओं से कहीं आगे बढ़ने का खतरा पैदा हो गया है। दुनिया के लिए संदेश एकदम साफ हैः अमेरिका अकेले कार्रवाई करने को तैयार है, भले इसके नतीजे पूरी दुनिया पर पड़ें और इसका बड़े पैमाने पर विरोध हो।

ज्यादा बुनियादी चिंता कोई एक फैसला नहीं, बल्कि अमेरिकी नीति की आम दिशा है। ट्रम्प की मध्य-पूर्व नीति ने अमेरिकी फैसले लेने की प्रक्रिया को इसराइल के युद्ध लक्ष्यों के साथ इस अभूतपूर्व स्तर तक जोड़ दिया है, कि स्वतंत्र फैसले लेने की गुंजाइश बहुत कम रह गई है। इसराइल से यही जुड़ाव वॉशिंगटन को दुनिया से अलग-थलग कर रहा है।

यह नुकसान ईरान युद्ध के पहले ही साफ दिखने लगा था जब अमेरिका ने गाजा में इसराइल के नरसंहार और जातीय सफाए का खुले तौर पर समर्थन किया। ईरान के साथ युद्ध ने यूरोप, एशिया और मध्य-पूर्व में बने गठबंधनों को और कमजोर कर दिया है; इसने उन साझेदारियों को कमजोर किया है, जिन्हें बनाने में दशकों लगे थे और साथ ही चीन और रूस जैसे प्रतिद्वंद्वियों को प्रभाव बढ़ाने का मौका दे दिया। जैसे-जैसे वॉशिंगटन सैन्य समाधानों को ज्यादा प्राथमिकता दे रहा है, वह उन्हीं नेटवर्कों को कमजोर कर रहा है जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से उसके प्रभाव को बढ़ाया।

खाड़ी क्षेत्र में यह सबसे ज्यादा साफ दिखता है। सालों तक, खाड़ी देशों ने अपनी सुरक्षा की गारंटी के तौर पर अमेरिका पर भरोसा किया, भले ही वे उसकी नीतियों से सहमत न हों। वह रिश्ता अब कमजोर पड़ रहा है। युद्ध ने उन्हें बेनकाब कर दिया है, वे आर्थिक रूप से कमजोर हो गए हैं और रणनीतिक रूप से अनिश्चित स्थिति में हैं। इस क्षेत्र को स्थिर करने के बजाय, अमेरिका के कदमों ने उनमें असुरक्षा की भावना को बढ़ा दिया है। भले ट्रम्प सफलता का दावा कर रहे हों, लेकिन ईरान और भी ज्यादा ताकतवर बनकर उभरा है; स्ट्रेट ऑफ होर्मुज पर उसका काफी दबदबा है- यह वह अहम समुद्री रास्ता है जो दुनिया के कच्चे तेल और एलएनजी के कम-से-कम 20 फीसद व्यापार को नियंत्रित करता है, और साथ ही उर्वरकों और प्रमुख कच्चे माल के वैश्विक समुद्री व्यापार के लगभग एक-तिहाई हिस्से को भी नियंत्रित करता है।

ऐसा लगता है कि वॉशिंगटन अपने सहयोगियों की चिंताओं पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। खाड़ी देश इस बात को लेकर चिंतित हैं कि उन्हें एक ऐसे टकराव में बुरी तरह घसीट लिया गया जिसे न तो उन्होंने शुरू किया, न ही वे उसे नियंत्रित कर सकते हैं, और जिससे उन्हें कोई फायदा भी नहीं होने जा रहा। यह धारणा कि नेतन्याहू, ट्रम्प को अपनी उंगलियों पर नचा रहे हैं- कि अमेरिकी नीति मुख्य रूप से क्षेत्रीय स्थिरता की चिंता के बजाय इसराइली प्राथमिकताओं और नेतन्याहू के जुनून से प्रेरित है- ने इस बेचैनी को और गहरा कर दिया है। किसी सहयोगी का समर्थन करना एक बात है, लेकिन उसके एजेंडे का बंधक बन जाना बिल्कुल दूसरी बात है।

ईरान के साथ युद्ध ने इस धारणा को और पुख्ता किया है। ये हमले असफल कूटनीति के बाद नहीं हुए; बल्कि ये चल रही बातचीत के बीच हुए, जिससे दुनिया भर में लंबे समय से चली आ रही उस आशंका को बल मिला है कि अमेरिका कूटनीति को एक प्रतिबद्धता के बजाय एक चाल के रूप में देखता है। यह बात मायने रखती है। जब सैन्य कार्रवाई से बातचीत प्रक्रिया को बार-बार कमजोर किया जाता है, तो विश्वास टूट जाता है। और बुनियादी स्तर के विश्वास के बिना, कूटनीति असंभव हो जाती है।

अमेरिकी फ़ैसले इसराइल के युद्ध लक्ष्यों के साथ इस तरह जुड़ गए हैं कि वह अपने हित में भी स्वाधीन फैसले नहीं ले पा रहा है। इसराइल से यही जुड़ाव वॉशिंगटन को दुनिया से अलग-थलग कर रहा है

वैश्विक दक्षिण में, ईरान के साथ युद्ध को 'चुनावी युद्ध' के रूप में देखा जाता है; कुछ पर्यवेक्षकों ने तो इसे 'मनमाना युद्ध' तक कह दिया है, यानी एक सैन्य महाशक्ति द्वारा एक कमजोर प्रतिद्वंद्वी को धमकाने का प्रयास। यह इस व्यापक धारणा को बल देता है कि तथाकथित नियम-आधारित व्यवस्था चयनात्मक और स्वार्थपरक है। जब वाशिंगटन अपने विरोधियों के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय कानून या परमाणु अप्रसार का हवाला देता है, लेकिन सुविधा के अनुसार इसकी अनदेखी करता है, तो उसकी कोई नैतिक वैधता नहीं रह जाती।

वैश्विक गठबंधनों में इस नैतिक वैधता की कमी का असर पहले से ही दिखने लगा है। जो देश कभी अमेरिका को एक स्थिर शक्ति के रूप में देखते थे, वे अब सतर्क रुख अपना रहे हैं। कुछ देश चीन के करीब जा रहे हैं, जो खुद को एक अधिक विश्वसनीय सहयोगी के रूप में प्रस्तुत करता है। दूसरे देश बस पीछे हट रहे हैं, और किसी भी बड़ी ताकत के साथ ज्यादा जुड़ने से कतरा रहे हैं। यहां तक कि यूके, फ्रांस, जापान, जर्मनी और दक्षिण कोरिया जैसे करीबी सहयोगी भी संयुक्त राष्ट्र में अपने वोट देने के तरीकों में अमेरिका से लगातार अलग होते जा रहे हैं।

ट्रम्प के समर्थक तर्क देते हैं कि ताकत ही मायने रखती है, आम सहमति नहीं। लेकिन यह तर्क जोर-जबरदस्ती करने वाली ताकत को आभास देता है कि इसका असर दीर्घकालिक है जबकि यह होता अल्पकालिक है। सैन्य ताकत से कुछ लड़ाइयां तो जीती जा सकती हैं, लेकिन इससे कोई अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था या महाशक्ति का दर्जा कायम नहीं रखा जा सकता। इसके लिए वैधता, सहयोग और नियमों-कायदों के आदर की इच्छाशक्ति की जरूरत होती है।

अमेरिका की नीति में जो विरोधाभास हैं, उन्हें अब नजरअंदाज करना नामुमकिन है। ऐसा लगता है कि वॉशिंगटन ने कूटनीति की भाषा अभी पूरी तरह नहीं छोड़ी है। वह अब भी बातचीत, युद्धविराम और ऐसी ही दूसरी बातों की अपील करता है, लेकिन उसके काम इसके ठीक उलटी दिशा में जाते हैं।

इसके कुछ नतीजे निकलते हैं। अमेरिका के लिए किसी भी विवाद में एक निष्पक्ष मध्यस्थ की भूमिका निभाना, या साझा लक्ष्यों के लिए अपने सहयोगियों को एकजुट करना, या यह दिखाना कि अमेरिकी नेतृत्व संकीर्ण और तात्कालिक स्वार्थों से परे भी सोच सकता है, और भी मुश्किल हो जाता है।

पश्चिम में भी दरारें चौड़ी होती जा रही हैं। नाटो समेत यूरोपीय सरकारों ने भले वाशिंगटन से खुलकर नाता न तोड़ा हो, लेकिन संयम बरतने और नए सिरे से कूटनीति अपनाने की उनकी मांगों से उनकी बेचैनी साफ जाहिर होती है। ट्रम्प ने तो पोप से भी झगड़ा मोल लिया है, जिससे उनके अपने देश में ईसाई समर्थकों के एक तबके के उनसे नाराज हो जाने की संभावना है। भले सीनेट में उनके पक्ष में वोट पड़ा हो, लेकिन मध्य-पूर्व में एक लंबे युद्ध के लिए आम लोगों का समर्थन बहुत कम है। इस युद्ध से वे निर्णायक नतीजे नहीं मिले, जिनका ट्रम्प ने वादा किया था। ईरान का शासन अब भी कायम है, और शायद युद्ध से पहले की तुलना में कहीं मजबूत है। उसका क्षेत्रीय प्रभाव जरा भी कम नहीं हुआ, और उसने समुद्री व्यापार के एक अहम रणनीतिक नाके पर सफलतापूर्वक अपना दबदबा बनाया है।

सहयोगियों के साथ तालमेल बैठाने और ईरान के साथ कूटनीति का रास्ता आजमाने के बजाय ट्रम्प ने 'अधिकतम दबाव' का रास्ता चुना, और बिना कोई सवाल किए मनमानी करने वाले एक निरंकुश क्षेत्रीय ताकत का साथ दिया। नतीजा यह हुआ कि एक महाशक्ति के पास अब न कोई दोस्त बचा और न कोई सच्चा सहयोगी। ट्रम्प का अमेरिका बेशक एक सैन्य महाशक्ति है, लेकिन उसकी कूटनीतिक साख लगभग पूरी तरह खत्म हो चुकी है। ■

अशोक स्वैन स्वीडन की उप्साला यूनिवर्सिटी में पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट रिसर्च के प्रोफेसर हैं

फोटोः गेटी इमेजेज

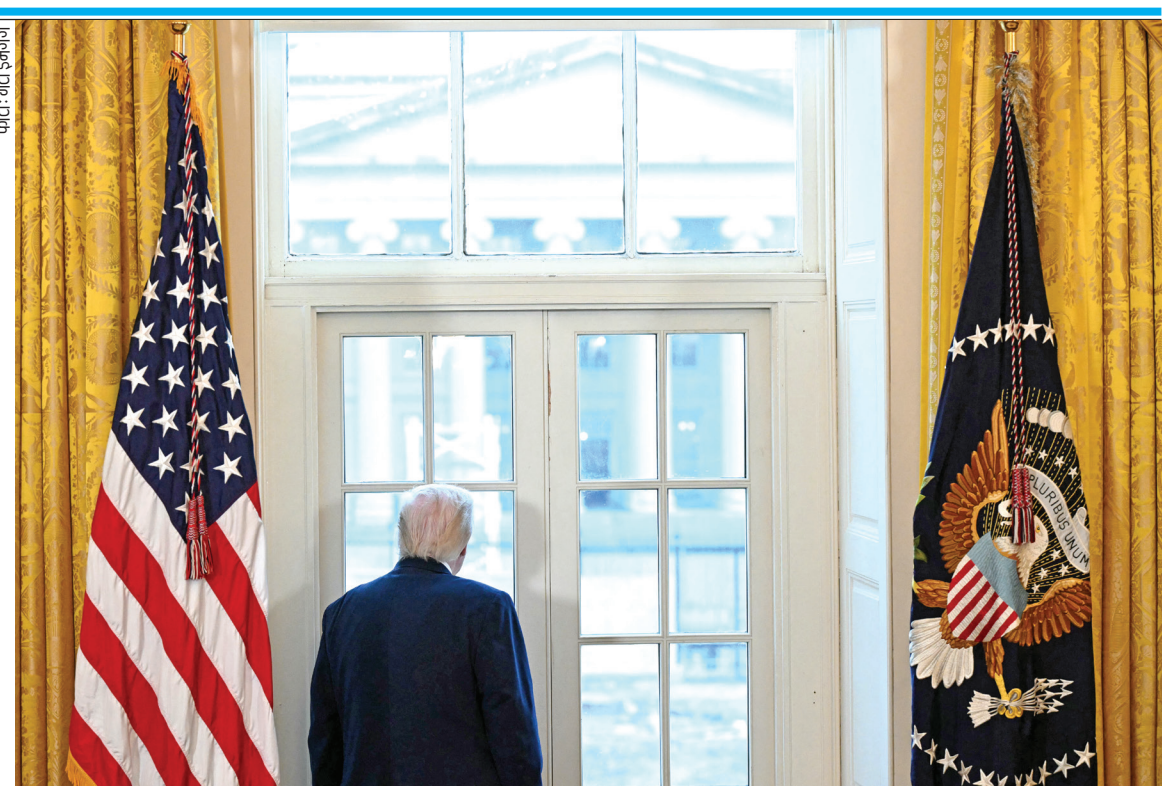

राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रम्प का अमेरिका बेशक सैन्य महाशक्ति है, लेकिन उसकी कूटनीतिक साख खत्म हो चुकी है

चुनावी बवंडर के साये में डॉनल्ड ट्रम्प

डॉनल्ड ट्रम्प की अप्रूवल रेटिंग गिरकर 39 फीसद रह गई जबकि 61 फीसद अमेरिकी उन्हें नापसंद करने लगे

आशीष राय

जब से अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रम्प को एहसास हुआ कि ईरान पर बमबारी से तेहरान सरकार घुटने नहीं टेकेगी, वह अपनी साख बचाकर निकलने का रास्ता खोजने लगे। संघर्ष के छह हफ्ते बाद, वह युद्धविराम के लिए राजी हो गए। इस्लामाबाद में अमेरिका और ईरान के बीच बातचीत का पहला दौर बेनतीजा रहा। इसके अलावा, ट्रम्प के लिए यह भी जरूरी था कि संघर्ष के कारण देश के भीतर आई आर्थिक मुश्किलों को दूर करें।

अमेरिका के मध्यावधि चुनावों के लिए राज्यों के हिसाब से प्राइमरी चुनाव 3 मार्च को शुरू हुए और 15 सितंबर को खत्म होंगे; इन्हीं से डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियों के अंतिम उम्मीदवार तय होंगे। राज्यों के गवर्नर, सीनेटर और प्रतिनिधि सभा के सांसदों के लिए आम चुनाव 3 नवंबर को होंगे।

नवंबर 2024 में मिली जबरदस्त जीत के बाद ट्रम्प की लोकप्रियता लगातार गिरती गई है। उनकी रिपब्लिकन पार्टी के पास सीनेट और प्रतिनिधि सभा, दोनों में बहुमत है जो अमेरिकी राष्ट्रपति के लिए बड़ी मदद होती है। इसके बावजूद वह कई कानून पास करवाने में नाकाम रहे हैं। इसकी वजह खुद रिपब्लिकन पार्टी के सदस्यों का विरोध था। उन्हें चिंता थी कि ऐसे कानून पास होने से उनके वोटर नाराज हो सकते हैं, और उनके चुनाव जीतने या दोबारा चुने जाने की संभावनाओं को नुकसान पहुंच सकता है। इस तरह, ट्रम्प ने कार्यकारी आदेशों का सहारा लिया, लेकिन इनकी वैधता का समय सीमित होता है और कुछ मामलों में, उनकी स्वीकार्यता भी सीमित होती है।

हालांकि, दोनों सदनों में बहुमत होने से ट्रम्प को विदेशों में सैन्य ऑपरेशन के मामले में कांग्रेस को दरकिनार करने की सहूलियत जरूर मिलती है। इनमें जनवरी 2026 में वेनेज़ुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो और उनकी पत्नी का गैर-कानूनी अपहरण करके उन्हें न्यूयॉर्क ले आना और इसराइल के साथ मिलकर ईरान पर बिना किसी उकसावे के हमला करना शामिल है। 28 फरवरी 2026 को हुए पहले हमलों के बाद से हजारों लोग मारे गए हैं, लगभग 25,000 लोग घायल हुए हैं और 20 लाख से ज्यादा बेघर हुए हैं।

संघर्ष के चार हफ्ते बाद अमेरिका में देशव्यापी 'नो किंग्स डे ऑफ एक्शन' के तहत बड़े पैमाने पर लोगों की लामबंदी दिखी। 28 मार्च को पूरे अमेरिका में 90 लाख से ज्यादा लोगों ने ट्रम्प, उनके प्रशासन और ईरान के खिलाफ युद्ध के विरोध में रैलियां निकालीं।

8-10 अप्रैल के बीच किए गए और 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' द्वारा प्रकाशित 'यूगोव' जनमत सर्वेक्षण के मुताबिक ट्रम्प की अप्रूवल रेटिंग गिरकर 39 फीसद पर आ गई, जबकि 61 फीसद अमेरिकी उनके काम से असंतुष्ट थे। ईरान पर जीत का दावा करते हुए 'ट्रुथ सोशल' पर उनके रोजाना के बयानों से कम ही लोग प्रभावित हुए। बढ़ती महंगाई के कारण जेब पर पड़ रहे बोझ से लोगों में हताशा बढ़ती जा रही है।

2026 में अमेरिका में जीडीपी वृद्धि धीमी हो गई है, उपभोक्ता कीमतें तेजी से बढ़ी हैं, कोविड-19 महामारी के बाद से रोजगार पैदा होने की दर सबसे कम है और एनर्जी की कीमतें आसमान छू रही हैं। फरवरी से मार्च के बीच पेट्रोल की कीमतें 21.2 फीसद बढ़ीं, जो 1967 में आंकड़ों की ट्रैकिंग शुरू होने के बाद सबसे ज्यादा मासिक बढ़ोतरी है। अमेरिकन ऑटोमोबाइल एसोसिएशन के मुताबिक कैलिफोर्निया में एक गैलन गैसोलीन की कीमत 5.93 डॉलर हो गई है जो पहले 3 डॉलर के आसपास थी।

बीबीसी द्वारा उद्धृत विश्लेषकों का अनुमान है कि आने वाले महीनों में खाने-पीने की कीमतें बढ़ सकती हैं, क्योंकि परिवहन और खेती से जुड़ी चीजों की बढ़ती कीमतों का असर अब दिखने लगा है। अमेरिका-इसराइल के हमले की जवाबी रणनीति के तौर पर ईरान ने होर्मुज को बंद कर रखा है जहां से कच्चे तेल, प्राकृतिक गैस, खाद, एल्युमीनियम और हीलियम जैसी जरूरी चीजों की बड़ी मात्रा में सप्लाई होती है।

ट्रम्प का कहना है कि एनर्जी की कीमतों में बढ़ोतरी कुछ समय के लिए है और इससे अर्थव्यवस्था को कोई खतरा नहीं। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय सप्लाई चेन के जरिये कीमतों में स्थिरता आने में अभी 4-5 महीने और लग सकते हैं। इससे, नवंबर के चुनावों मे भाग लेने वाले रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार चिंतित हैं।

इसके अलावा, ट्रम्प का अमेरिका में जन्मे पोप लियो XIV के साथ टकराव भी अजीब है। पोप लियो XIV कैथोलिक चर्च के चुने हुए प्रमुख हैं। ट्रम्प ने पोप पर 'विदेश नीति के लिए बहुत बुरा' होने का आरोप लगाया और कहा, 'मैं पोप लियो का प्रशंसक नहीं।' पोप ने इसका जवाब देते हुए कहा, 'मुझे ट्रम्प प्रशासन से डर नहीं... एक शांतिदूत के तौर पर, मैं धर्म संदेश में यकीन रखता हूं।'

अमेरिका में कैथोलिक आबादी 20 फीसद है और वे लोग इस टकराव को हल्के में नहीं लेंगे जबकि प्रोटेस्टेंट लोगों के लिए भी इसे नजरअंदाज करना मुश्किल होगा। इसके अलावा, 36 फीसद कैथोलिक हिस्पैनिक हैं; उन्होंने जरूर गौर किया होगा कि स्पेन और अन्य स्पेनिश-भाषी देशों ने अमेरिका और इसराइल की आक्रामकता की साफ तौर पर निंदा की है।

फोटोः गेटी इमेजेज

ट्रम्प के समक्ष आ रही चुनौतियां बड़ी हैं। इनसे पार पाना आसान नहीं

इसका मतलब है कि रिपब्लिकन पार्टी हाउस और शायद सीनेट पर अपना नियंत्रण खो सकती है। हाउस में डेमोक्रेटिक बहुमत का सीधा मतलब होगा ट्रम्प के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव, हालांकि सीनेट में उन्हें दोषी ठहराना- जिसके बाद राष्ट्रपति को पद से हटाया जाता है और जिसके लिए दो-तिहाई बहुमत जरूरी होता है, शायद ज्यादा मुश्किल हो।

अगर विधायिका राष्ट्रपति के खिलाफ हो जाए, तो वह राष्ट्रपति को 'शक्तिहीन' बना सकती है। उसके बाद भी ट्रम्प विदेशों में सैन्य अभियान शुरू कर सकते हैं। ऐसी मनमानियों पर रोक का अकेला तरीका है कि डेमोक्रेट 1973 के 'वॉर पावर्स एक्ट' में संशोधन करे। अभी के नियम के मुताबिक राष्ट्रपति के लिए सेना तैनात करने के 48 घंटों के भीतर कांग्रेस को सूचित करना जरूरी है, और यह भी अनिवार्य है कि 60-90 दिनों के भीतर सेना को वापस बुला लिया जाए, जब तक कि कांग्रेस उस कार्रवाई को मंजूरी न दे दे। अब तक, ट्रम्प ने जान-बूझकर इन्हीं नियमों का पालन किया है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री कीर स्टारमर ने ईरानी बंदरगाहों की नाकेबंदी में अमेरिका का साथ देने से साफ मना कर दिया; यह संकेत है कि वॉशिंगटन और लंदन के 'खास रिश्तों' में दरार पड़ने लगी है। इसके बजाय, 17 अप्रैल को यूके और फ्रांस ने 40 से भी ज्यादा देशों के सम्मेलन की मेजबानी की जिसका मकसद होर्मुज में यातायात और 'आवाजाही की आजादी' बहाल करने के लिए 'रक्षात्मक नौसैनिक मिशन' की संभावनाओं पर चर्चा करना था। इस बीच, ईरान ने कूटनीतिक तौर पर पश्चिमी देशों को बांटने और अमेरिका को अलग-थलग करने की कोशिश में, होर्मुज के रास्ते स्पेन और फ्रांस को ऊर्जा की सप्लाई शुरू कर दी है।

अंतरराष्ट्रीय समुदाय राजी हो जाए तो होर्मुज से गुजरने वाले जहाजों पर टोल लगाने की ईरान की इच्छा खतरनाक मिसाल कायम कर देगी। यह संयुक्त राष्ट्र के 'समुद्री कानून कन्वेंशन' का भी उल्लंघन होगा, जिसके मुताबिक किसी देश की समुद्री सीमा उसके तट से 12 नॉटिकल मील से ज्यादा नहीं हो सकती।

दुनिया के कम-से-कम नौ अन्य जलडमरूमध्य पर भी ऐसी ही मांग उठ सकती है। इनमें दक्षिण-पूर्व एशिया का मलक्का जलडमरूमध्य भी है, जो सिंगापुर के पास अपने सबसे संकरे बिंदु पर 1.7 मील चौड़ा है और दुनिया के समुद्री व्यापार का 25 फीसद हिस्सा संभालता है; जिब्राल्टर जलडमरूमध्य, जो अटलांटिक महासागर को भूमध्य सागर से जोड़ता है; और बाब-अल-मंडेब, जो लाल सागर को अदन की खाड़ी से जोड़ता है और स्वेज नहर के प्रवेश द्वार के रूप में काम करता है।

अमेरिका और ईरान के बीच 48 सालों में पहली सीधी बातचीत हुई। इसके 'असफल' होने की बात मीडिया में छाई हैं। दोनों पक्षों में दशकों के अविश्वास, जिसे ट्रम्प के आक्रामक रवैये ने और बढ़ा दिया था, को देखते हुए यह उम्मीद बेमानी थी कि बातचीत के पहले दौर में बड़ी सफलता मिल जाएगी। यह मानने की वजह है कि कई मुद्दों पर सैद्धांतिक रूप से सहमति बनी, हालांकि ईरान द्वारा अपने परमाणु कार्यक्रम को छोड़ने के तौर-तरीकों पर सहमति नहीं बनी थी। 26 फरवरी को जिनेवा में अमेरिका और ईरान के प्रतिनिधियों के बीच हुई अप्रत्यक्ष बातचीत में मध्यस्थता करने वाले ओमान के विदेश मंत्री सैय्यद बदर अलबुसैदी ने बातचीत में 'काफी प्रगति' की बात कही है। 'ले मोंडे' ने रिपोर्ट किया, 'खाड़ी देश (ओमान) का कहना है कि ईरान यूरेनियम का जीरो स्टॉक रखने और मौजूदा संवर्धित सामग्री को ईंधन में बदलने पर राजी है; इसे अभूतपूर्व सफलता बताया जा रहा है।'

जैसा कि ट्रम्प कहते हैं, कोई भी समझौता रिपब्लिकन के लिए निस्संदेह राहत की बात होगी; लेकिन यह शायद आगे आने वाली चुनावी चुनौतियों से पूरी तरह पार पाने के लिए काफी न हो। और इस बीच, कौन जाने कि ट्रम्प आगे क्या करें? ■

2026 में अमेरिका की जीडीपी वृद्धि की रफ़्तार धीमी हुई, महंगाई बढ़ी, कोविड-19 के बाद से रोजगार सृजन की दर सबसे कम है। फरवरी-मार्च में पेट्रोल की कीमतें 21.2 फीसद बढ़ीं, जो 1967 के बाद का रिकॉर्ड है। एक गैलन गैसोलीन 3 की जगह 5.93 डॉलर की हो गई

'संकट की घड़ी' में क्यों न की जाए राजनीति?

बात अपने हितों की हो तो खुद बाज नहीं आते। ऐसे में बड़ा सवाल कि जो दूसरों से राजनीति न करने को कहते हैं, उन्हें कैसे धता बताया जाए?

कृष्ण प्रताप सिंह

नरेन्द्र मोदी सरकार का यह अजब रवैया है। खुद लगातार राजनीति करती रहती है। मामला उसके स्वार्थों को साधने का हो तो राजनीति के किसी भी गर्हित रूप को बरतने से बाज नहीं आती। लेकिन किसी संकट की घड़ी में विपक्ष उसे घेरने और सवाल पूछने लगे तो इस कुतर्क के साथ हाजिर हो जाती है कि 'ऐसे' मामले में राजनीति नहीं की जानी चाहिए।

फिर उसका पैरोकार मीडिया भी पूछने लग जाता है कि विपक्षी नेता 'ऐसे' संवेदनशील मामले में राजनीति क्यों कर रहे हैं। तेवर कुछ ऐसा, जैसे 'वैसे' मामले में राजनीति करना ऐसा गुनाह हो, जिसकी कोई माफी मुमकिन न हो!

विपक्षी नेता आम तौर पर असहज हो जाते हैं। निरुत्तर भी। लेकिन पांच साल पहले 2021 में छह अक्तूबर को लखीमपुर खीरी जा रहे वरिष्ठ कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने इसके जवाब में जो कुछ कहा था, मोदी सरकार उसे याद रख पाती तो विपक्ष पर इस तरह की तोहमत लगाने से पहले सौ बार सोचता। लखीमपुर खीरी के तिकुनिया में तीन अक्तूबर 2021 को कृषि कानूनों का विरोध कर रहे किसानों पर केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा टेनी के काफिले की गाड़ियां चढ़ा दी गई थीं। इस कांड में चार किसानों सहित कुल आठ लोगों की मौत हो गई थी। इसके बाद भड़की हिंसा में मंत्री के ड्राइवर और तीन भाजपा कार्यकर्ताओं की जान भी गई थी। दरअसल, पुलिस द्वारा राहुल को लखीमपुर खीरी जाने से रोक दिए जाने के बाद पत्रकारों ने उनसे पूछा कि इस मामले पर राजनीति क्यों की जा रही है। तब उन्होंने कहा था कि राजनीति लोकतंत्र में नहीं, तो और किस सत्ता व्यवस्था में की जाएगी?

जाहिर है कि मोदी सरकार जरा-सी भी जिम्मेदार होती तो उस पर यह टिप्पणी 'सौ सोनार की तो एक लोहार की' की तरह पड़ती। गैरजिम्मेदारियों के लंबे सिलसिले के बाद वह ईरान पर अमेरिका-इसराइल के हमले से देश में पैदा हुए संकटों को लेकर कठघरे में खड़ी किए जाने को लेकर फिर वही राग अलाप रही है कि ऐसे संकट के वक्त राजनीति नहीं की जानी चाहिए। प्रतिप्रश्न यह है कि जब देशवासियों के समक्ष जीवन मरण का संकट उपस्थित हो, तब भी राजनीति न की जाए तो कब की जाए? क्या उसे केवल हंसी-ठट्ठे या मन बहलाव के लिए इस्तेमाल किया जाए?

विडंबना यह कि इस प्रतिप्रश्न का उत्तर देश में लोकतंत्र और राजनीति दोनों की एक साझा समस्या से होकर गुजरता है। समस्या यह कि चेतना के विकास के सारे दावों के बावजूद लोकतंत्र और राजनीति दोनों की स्पष्ट समझ का अभाव खत्म होने को नहीं आ रहा। इसके चलते हमारी जनता का एक हिस्सा अभी भी अपने प्रजा रूप के ज्यादा नजदीक है, नागरिक रूप के निकट कम।

कोई 79 साल पहले पूर्ववर्ती ब्रिटिश साम्राज्यवादी राजतंत्री व्यवस्था को दरकिनार कर हम जिस लोकतांत्रिक व्यवस्था की ओर बढ़े थे, बहुत से मायनों में वह अभी भी राजतंत्र से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है। इसलिए हम लोकतंत्र के लबादे में भी राजतंत्र जैसे अत्याचार झेलने को अभिशप्त हैं और हमारे निर्वाचित प्रतिनिधियों में से अनेक 'निर्वाचित महाराजाओं' जैसे आचरण के अभ्यस्त हैं। इसलिए वह सीमारेखा प्रायः धुंधली होती रहती है, जिसके इस पार आकर प्रजा नागरिक में बदल जाती है और दूसरी ओर जाते ही नागरिक प्रजा में।

यहां 'प्रजा' और 'नागरिक' के बीच के बुनियादी फर्क को गांठ बांध लेना जरूरी है। प्रजा हमेशा अपने सारे संसार को, यहां तक कि सपनों को भी, अपने राजा की आंख से देखने और राजाज्ञाओं का पालन करने को अभिशप्त होती है। इसके विपरीत नागरिक राज्य के स्वरूप और इच्छाओं के निर्माण में भागीदार हुआ करते हैं।

राजनीति में भी और तब राजनीति अपराध नहीं उनका अधिकार बन जाती है। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री को बदनाम करने तो क्या, उन्हें बेदखल करने के प्रयत्न भी तब अपराध नहीं रह जाते, बशर्ते वे हिंसक न हों।

अगर हम अपनी लोकतांत्रिक चेतनाओं का समय के साथ समुचित विकास कर पाए होते और हमारे प्रतिनिधियों के चलते उसका जनविरोधी स्वरूप पहले की ही तरह हमें सताता नहीं रहता, तो यह समझने में कठिनाई नहीं होती कि राजनीति के जिस मॉडल के विरोध से देश का प्राचीन साहित्य भरा पड़ा है, वह कुछ और हुआ करती थी।

निस्संदेह, इतनी गर्हित कि उसके लिए 'वेश्या' जैसे विशेषण इस्तेमाल किए जाते थे। उसे बरतने वाले राजा को तो दस हजार पशुओं का वध कर चुके कसाई से भी ज्यादा जालिम बताया जाता था! यहां तक कि भगवानों के ज्यादातर अवतार अत्याचारी राजाओं का वध करने के उद्देश्य से ही हुए बताए गए हैं। ऐसी कथाएं बार-बार दोहराई गई हैं कि राजाओं के अत्याचार से त्रस्त पृथ्वी ने ब्रह्मा के पास जाकर निजात दिलाने की करुण याचना की। तब ब्रह्मा ने आश्वासन दिया कि जल्दी ही भगवान अवतार लेकर उसकी मनोकामना पूरी कर देंगे!

विडंबना यह कि इस साहित्य द्वारा निर्मित राजनीति की राजतंत्री अवधारणा इतने दशक लोकतंत्र की हवा में सांस लेने के बावजूद हमारे अनेक लोगों के दिल-दिमाग में ऐसी बद्धमूल है कि निकलने को नहीं आ रही! इसीलिए सरकारों के दुष्कृत्यों के विरुद्ध मुंह खोलने और उनसे सवाल पूछने वालों पर राजनीति करने के आरोप लगाए जाने लगते हैं। तब पलटकर पूछते नहीं कि आखिर राजनीति हमारे जीवन-मरण से जुड़े प्रश्नों पर नहीं तो और कब बरती जाएगी? कवि अदम गोंडवी के शब्दों में कहें तो वह कब तक माइक और माला का पर्याय बनी रहेगी?

लेकिन हम सोचते भी नहीं कि क्या आज भी, जब हम राजाओं की सत्ता को अंतिम प्रणाम निवेदित करके राज्य को अपने सामूहिक स्वामित्व और संयुक्त शक्ति का उद्बोधक बनाने के सफर पर चल पड़े हैं और जानने लगे हैं कि घृणा की पात्र वेश्या नहीं बल्कि उसे वेश्या बनाने वाली व्यवस्था है, क्या तब भी राजनीति हमारे निकट उतनी ही 'निन्द्य' या 'अस्पृश्य' होनी चाहिए?

तब भला यही कैसे पूछें कि कहीं उन लोगों ने उसे जानबूझकर तो निन्द्य नहीं बनाए रखा, जो समय के पहिये को उल्टा घुमाकर हमें फिर से राजाओं और रानियों के युग में ले जाना या लोकतांत्रिक महाप्रभुओं को उनके जैसा ही कुटिल और षड्यंत्रकारी बनाना चाहते हैं, ताकि हम राजनीति से घृणा के युग में ही जीते रहें और वे उसके मजे लूटते रहें।

यह समझने की बहुत जरूरत है कि अभी भी देश की राजनीति राज्य के नैतिक आचरण, व्यवहार और क्रियाकलाप का पर्याय नहीं बन पाई है। इसीलिए उसके मजे लूटने वाले देश पर किसी भी समय अत्याचार करते या सोते पकड़े जाते हैं तो धूर्ततापूर्वक कहने लगते हैं कि इस वक्त राजनीति बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। उन्हें अपनी कारस्तानियों पर परदा डालने का महज यही रास्ता दिखता है।

सवाल है कि किसी अत्याचार को राजनीति ने ही पाला-पोसा या न्यौता हो तो प्रतिकार का इसके अलावा और कौन-सा तरीका है कि वैकल्पिक राजनीति की मार्फत उसे कठघरे में खड़ा किया जाए? ऐसी राजनीति न की जाए तो क्या सत्ताओं के आपराधिक ओछेपन को जनता की कमजोर याद्दाश्त के रास्ते बार-बार नए अत्याचारों की भूमिका ही लिखती रहने दिया जाए? जो लोग खुद राजनीति जारी रखकर दूसरों से राजनीति न करने को कहते हैं, उनके मंसूबों को तब कैसे धता बताया जाए?

इस सिलसिले में पूछा जाने वाला सबसे बड़ा सवाल यह है कि जनता के रोष, क्षोभ, आकांक्षाओं और अरमानों से जुड़ी राजनीति को किसी भी समय सक्रिय होने में कोई बाधा क्यों होनी चाहिए? सो भी, जब आम दिनों में सत्ताधीश जिन स्वार्थ-साधनाओं और आरोप-प्रत्यारोपों में व्यस्त रहते हैं, उन्होंने राजनीति का ऐसा विद्रूप गढ़ दिया है कि कई लोगों की निगाह में वही सबसे बड़ी विपदा बन गई है?

जवाब यह समझने में है कि जो लोग विपक्ष पर 'संकट की घड़ी' में राजनीति करने की तोहमत मढ़ते हैं, वे भी एक खास तरह की, अप्रिय सवालों से बचने की, राजनीति ही कर रहे होते हैं। जब वे किसी भी तरह अप्रिय सवालों को टालने की हालत में नहीं होते, तो चाहते हैं कि वे पूछे ही न जाएं! ■

फोटो: गेटी इमेजेज

अमेरिकी-इसराइली सैन्य अभियान में ध्वस्त दक्षिणी तेहरान का एक रिहायशी इलाका

> किसी अत्याचार को राजनीति ने ही पाला-पोसा या न्यौता हो तो प्रतिकार का इसके अलावा और कौन-सा तरीका है कि वैकल्पिक राजनीति की मार्फत उसे कठघरे में खड़ा किया जाए?

ईरान-इसराइल तनाव और अमेरिकी दुविधा

जटिल मोड़ पर आकर खड़ी हो गई है कभी शक्ति संतुलन का केन्द्र रही मध्य-पूर्व की राजनीति

शैलेन्द्र चौहान

मध्य-पूर्व की राजनीति लंबे समय से वैश्विक शक्ति-संतुलन का केन्द्र रही है। लेकिन हाल के वर्षों में ईरान–इसराइल तनाव ने इसे एक नए और अधिक जटिल मोड़ पर ला खड़ा किया है। इस परिदृश्य में डगलस मैकग्रेगोर की मध्य-पूर्व की राजनीति लंबे समय से वैश्विक शक्ति-संतुलन का केन्द्र रही है। डगलस मैकग्रेगोर जैसे विश्लेषकों की टिप्पणियां केवल व्यक्तिगत राय नहीं, बल्कि अमेरिकी विदेश नीति के भीतर चल रहे वैचारिक द्वंद्व की अभिव्यक्ति भी हैं। उनका यह तर्क कि इसराइल की आक्रामक नीतियां अमेरिका को एक व्यापक क्षेत्रीय युद्ध में धकेल सकती हैं, दरअसल उस चिंता को रेखांकित करता है जो "वैश्विक हस्तक्षेप" और "राष्ट्रीय हित" के बीच संतुलन को लेकर अमेरिका के भीतर मौजूद है।

मैकग्रेगर का "अमेरिका फर्स्ट" पर जोर सीधे उस राजनीतिक धारा से जुड़ता है, जिसे अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने लोकप्रिय बनाया था। इस विचारधारा का मूल आग्रह यह है कि अमेरिका को अपने संसाधनों और सैन्य शक्ति का उपयोग केवल अपने प्रत्यक्ष हितों की रक्षा के लिए करना चाहिए, न कि सहयोगी देशों के संघर्षों में उलझने के लिए। इसी संदर्भ में इसराइल के साथ अमेरिका के गहरे सामरिक संबंधों पर प्रश्न उठाए जाते हैं। अमेरिका के लिए इसराइल एक महत्वपूर्ण रणनीतिक सहयोगी है, लेकिन यह संबंध कभी-कभी उसे ऐसे संघर्षों में भी खींच सकता है, जो उसके दीर्घकालिक आर्थिक और राजनीतिक हितों के अनुकूल नहीं होते।

ईरान– इसराइल तनाव का सबसे संवेदनशील आयाम ऊर्जा सुरक्षा से जुड़ा है। स्ट्रेट ऑफ होर्मुज विश्व के लगभग एक-तिहाई समुद्री तेल व्यापार का मार्ग है। यदि किसी भी कारण से यह मार्ग बाधित होता है, तो उसका प्रभाव केवल क्षेत्रीय नहीं बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। मैकग्रेगर की यह चेतावनी कि इसराइल द्वारा ईरान के तेल या परमाणु ठिकानों पर हमला इस जलडमरूमध्य को बंद करने की स्थिति पैदा कर सकता है, एक संभावित परिदृश्य को सामने रखती है। हालांकि, यह भी उतना ही सत्य है कि ऐसा कदम ईरान के लिए भी अत्यंत जोखिमपूर्ण होगा, क्योंकि इससे वह सीधे अंतरराष्ट्रीय सैन्य प्रतिक्रिया का सामना करेगा। इस प्रकार, यह संभावना "परमाणु विकल्प" की तरह है। वह मौजूद तो है, लेकिन उसका उपयोग अंतिम स्थिति में ही किया जा सकता है।

सैन्य दृष्टि से देखें तो मध्य-पूर्व में अमेरिकी उपस्थिति एक दोधारी तलवार है। एक ओर यह अमेरिका को क्षेत्रीय संतुलन बनाए रखने की क्षमता देती है, वहीं दूसरी ओर यह उसे संभावित हमलों के प्रति संवेदनशील भी बनाती है। मैकग्रेगर का यह कहना कि हजारों अमेरिकी सैनिक "सिटिंग डक्स" बन सकते हैं, एक अतिशयोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है, लेकिन इसमें निहित चिंता वास्तविक है। किसी व्यापक संघर्ष की स्थिति में ईरान अपने प्रॉक्सी नेटवर्क और मिसाइल क्षमताओं का उपयोग कर सकता है, जिससे अमेरिकी ठिकानों पर खतरा बढ़ेगा। हालांकि, अमेरिका की उन्नत रक्षा प्रणालियां और नौसैनिक शक्ति इस खतरे को संतुलित भी करती हैं, जिससे युद्ध का परिणाम एकतरफा नहीं होगा।

इस पूरे विमर्श में इराक युद्ध का संदर्भ बार-बार सामने आता है। 2003 में अमेरिका ने जिस तरह इराक पर आक्रमण किया, वह बाद में एक दीर्घकालिक रणनीतिक भूल के रूप में देखा गया। मैकग्रेगर जैसे विश्लेषक यह तर्क देते हैं कि उस समय "नीओकॉन" विचारधारा और इसराइल समर्थक लॉबी ने अमेरिका को एक ऐसे युद्ध में धकेला, जिसका परिणाम अस्थिरता और संसाधनों की भारी क्षति के रूप में सामने आया।

आज जब ईरान के संदर्भ में इसी तरह की आक्रामक नीतियों की चर्चा होती है, तो स्वाभाविक रूप से इराक युद्ध की स्मृति चेतावनी के रूप में सामने आती है। हालांकि, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वर्तमान स्थिति अधिक जटिल है। यह केवल दो देशों के बीच युद्ध का प्रश्न नहीं, बल्कि बहुस्तरीय शक्ति-संघर्ष का हिस्सा है, जिसमें रूस, चीन, खाड़ी देश और यूरोप भी अप्रत्यक्ष रूप से शामिल हैं।

इसराइल की नीतियों पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मतभेद स्पष्ट हैं। मैथ्यू मिलर जैसे अधिकारियों के बयानों में जहां गाजा में संभावित युद्ध अपराधों की बात उठती है, वहीं दूसरी ओर पीट हेगसेथ जैसे नेता इसराइल की सैन्य क्षमताओं और उसके आत्मरक्षा के अधिकार का समर्थन करते हैं। यह विभाजन केवल अमेरिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी देखा जा सकता है। जहां एक ओर मानवाधिकार और अंतरराष्ट्रीय कानून की चिंता है, वहीं दूसरी ओर सुरक्षा और आतंकवाद-विरोधी रणनीतियों का पक्ष भी मौजूद है।

इस पूरे परिदृश्य का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि ईरान–इसराइल तनाव केवल क्षेत्रीय संघर्ष नहीं रह गया है; यह वैश्विक शक्ति-संतुलन, ऊर्जा सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के जटिल ताने-बाने का हिस्सा बन चुका है। मैकग्रेगर की चेतावनियां इस जटिलता के एक पक्ष को उजागर करती हैं। वह पक्ष जो अनियंत्रित सैन्य हस्तक्षेप के खतरों की ओर संकेत करता है। लेकिन साथ ही यह भी आवश्यक है कि इन चेतावनियों को अंतिम सत्य के रूप में न देखा जाए, बल्कि व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझा जाए।

अंततः, अमेरिका के सामने चुनौती यह है कि वह अपने रणनीतिक सहयोगी इसराइल के साथ संबंध बनाए रखते हुए, एक व्यापक क्षेत्रीय युद्ध से कैसे बचा रहे। यह संतुलन साधना आसान नहीं है, क्योंकि इसमें न केवल सैन्य और आर्थिक हित जुड़े हैं, बल्कि वैश्विक नेतृत्व की उसकी भूमिका भी दांव पर है। यदि यह संतुलन बिगड़ता है, तो उसका प्रभाव केवल मध्य-पूर्व तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि पूरी दुनिया विशेषकर ऊर्जा-निर्भर अर्थव्यवस्थाओं पर गहरा असर डालेगा।

ऐसे में यह आवश्यक है कि नीति-निर्माण भावनात्मक या वैचारिक आग्रहों के बजाय यथार्थवादी आकलन और बहुपक्षीय संवाद पर आधारित हो, ताकि संभावित संकट को टाला जा सके और स्थिरता की दिशा में आगे बढ़ा जा सके। जैसे विश्लेषकों की टिप्पणियां केवल व्यक्तिगत राय नहीं, बल्कि अमेरिकी विदेश नीति के भीतर चल रहे वैचारिक द्वंद्व की अभिव्यक्ति भी हैं। उनका यह तर्क कि इसराइल की आक्रामक नीतियां अमेरिका को एक व्यापक क्षेत्रीय युद्ध में धकेल सकती हैं, दरअसल उस चिंता को रेखांकित करता है जो "वैश्विक हस्तक्षेप" और "राष्ट्रीय हित" के बीच संतुलन को लेकर अमेरिका के भीतर मौजूद है। ■

फोटो: गेटी इमेजेज

हमले की शिकार ईरान की बहुमंजिला इमारत और युद्ध की वजह से संकट में फंसे अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप

> अमेरिका के सामने चुनौती यह है कि वह अपने रणनीतिक सहयोगी इसराइल के साथ संबंध बनाए रखते हुए एक व्यापक क्षेत्रीय युद्ध से कैसे बचा रहे। यह संतुलन साधना आसान नहीं है

Published Date 19 April, 2026 (Sunday), Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06, Posting Days Friday and Saturday

सभी फोटो: नवकिरन सिंह

पंजाब के किसान भारी दबाव में हैं। इसका प्रमाण भूमिहीन दलित किसान दलबारा सिंह (बाएं) और लखविंदर सिंह भी हैं जो पहले से कर्ज में डूबे हैं और अब डीज़ल के लिए फिर से कर्ज लेने को अभिशप्त हो गए हैं

युद्ध में ईरान, कर्ज में पंजाब के किसान

बरनाला जिले के किसानों को कर्ज के जाल में और गहराई तक ढकेल रहा है ईरान युद्ध

विश्व भारती

जैसे-जैसे हरे-भरे गेहूं के खेत सुनहरे होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे बरनाला जिले के पत्ती गांव के दलबारा सिंह की चिंताएं भी गहरी होती जा रही हैं। जल्द ही कटाई का समय आ जाएगा। जल्द ही डीजल सिर्फ ईंधन नहीं, बल्कि जीवनरेखा बन जाएगा। यही वजह है कि यह भूमिहीन दलित किसान बिना हिचके 18 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर कर्ज ले लेता है, ताकि उसका डीजल का ड्रम हमेशा भरा रहे।

दलबारा सिंह (55) अपने तीन भाइयों के साथ एक एनआरआई से लीज पर ली गई 20 एकड़ जमीन को जोतते हैं। कटाई के मौसम में वह दूसरों के खेतों में कटनी का काम करते हैं और डेयरी किसानों के लिए गेहूं का भूसा काटते हैं। वह अपने ट्रैक्टर और कटाई मशीन की ओर इशारा करते हुए कहते हैं, "ये तो डीजल के भूखे हैं। अगर इन्हें पूरी क्षमता से चलाया जाए, तो यह ड्रम सिर्फ दो दिन चलेगा।"

लेकिन इतनी ऊंची ब्याज दर पर कर्ज? इस स्वाभाविक सवाल पर वह कहते हैं- "मेरे पास और क्या उपाय था? अगर एक हफ्ते बाद डीजल ही न मिला तो? मेरी पूरी फसल खेत में सड़ जाएगी। मैंने इसे बच्चे की तरह पाला है।" दलबारा की आमदनी का हिसाब लगाना मुश्किल है, क्योंकि पिछले एक साल से उनकी कोई कमाई नहीं हुई है। घाटा और कर्ज लगातार बढ़ते जा रहे हैं।

पंजाब के किसानों के लिए अमेरिका-इजसराइल का ईरान पर हमले का मतलब अब और अधिक कर्ज का बोझ है। लेकिन दलबारा सिंह और उनके जैसे अनेक लोगों के लिए यह और भी बड़ा संकट है, जिनके बच्चे खाड़ी देशों में मजदूर या अर्धकुशल कामगार के रूप में काम करते हैं। यह युद्ध उनके भविष्य को भी ख़तरे में डाल रहा है। अभी पिछले महीने ही उन्होंने अपने बेटे को साइप्रस भेजने के लिए 4 लाख रुपये उधार लिए थे। साइप्रस पश्चिम एशिया का देश है (हालांकि भू-राजनीतिक रूप से यूरोप का हिस्सा माना जाता है) और उसकी अर्थव्यवस्था पर्यटन तथा शिपिंग पर निर्भर है। जारी युद्ध ने इन दोनों क्षेत्रों को बुरी तरह प्रभावित किया है। वह कहते हैं, "लेकिन मेरा बेटा खुश नहीं है, क्योंकि उसे काम नहीं मिला। अब वह बेचैन है और वापस लौटना चाहता है।" दलबारा मासूमियत से इसे अपनी किस्मत का दोष मानते हैं और हमारी पूरी बातचीत में एक बार भी युद्ध का जिक्र नहीं करते।

गेहूं की कटाई का मौसम नजदीक आने और युद्ध से बनी अनिश्चितता के कारण, कई किसानों ने पखवाड़े भर पहले से ही डीजल जमा करना शुरू कर दिया है। पेट्रोल पंपों पर ट्रैक्टरों की लंबी कतारें दिखती हैं, जिनके पीछे खाली डीजल ड्रम रखे होते हैं। पटियाला जिले में भारतीय किसान यूनियन (डकौंदा) के नेता रघबीर सिंह डकाला कहते हैं, "ये सभी भारी ब्याज पर कर्ज लेकर डीजल खरीद रहे हैं।"

हार्वेस्टर से कटनी का काम करने वालों के सामने चुनौती और भी बड़ी है। मिसाल के तौर पर पत्ती गांव के 31 वर्षीय लखविंदर सिंह हैं, जिनके पास अपनी पांच एकड़ जमीन है, लेकिन उससे उनका गुजारा नहीं हो पाता। पिछले साल उन्होंने 12 लाख रुपये का कंबाइन हार्वेस्टर लिया- जो पूरी तरह कर्ज लेकर खरीदा गया था। यह बहुत बड़ा जोखिम था, क्योंकि पिछले वर्ष दोनों फसलों से उनकी कुल कमाई सिर्फ 1.5 लाख रुपये हुई थी। इसके अलावा गांव के सहकारी बैंक का 3 लाख रुपये का कर्ज भी उन पर है। हर छह महीने में उन्हें फाइनेंसर को 1 लाख रुपये की किस्त चुकानी होती है। अब उन्होंने डीजल खरीदने के लिए अपने आढ़तिया (कमीशन एजेंट और साहूकार) से 20,000 रुपये और उधार लिए हैं। वह बताते हैं, "कटाई का मौसम अब सिर्फ 20 दिन का रह गया है। मैं इन तीन हफ्तों में एक दिन के लिए भी मशीन को खाली खड़ा नहीं रहने दे सकता। अगर मैं किस्त नहीं चुका पाया, तो हार्वेस्टर भी हाथ से चला जाएगा।"

कर्ज के बोझ तले दबा ग्रामीण पंजाब अब और गहरे कर्ज के जाल में फंसता जा रहा है। दिसंबर 2025 में पंजाब राज्य किसान एवं खेत मजदूर आयोग के एक अध्ययन में पाया गया कि राज्य के किसानों पर बैंकों का लगभग 1.04 लाख करोड़ रुपये और साहूकारों का लगभग 20,000 करोड़ रुपये बकाया है। पिछले दो दशकों में ग्रामीण कर्ज पांच गुना बढ़ा है। यह युद्ध पहले से ही अकल्पनीय नजर आते इन आंकड़ों को और ऊपर ले जाने वाला है।

भले ही डीजल का ड्रम कर्ज का भारी बोझ उठाकर भर गया है या उनका बेटा साइप्रस से लौट आएगा, लेकिन दलबारा सिंह जानते हैं कि मुश्किलें यहीं खत्म नहीं होंगी। अगर कटाई ठीक से हो गई, तो उसके बाद बुआई आएगी। वह पूछते हैं- "मैंने सुना है, डीजल की तरह खाद भी उसी रास्ते से आती है?" यह एक ऐसा सवाल है, जिसका जवाब सरकार को जरूर देना चाहिए। ■

> कर्ज के बोझ तले दबा ग्रामीण पंजाब अब और गहरे कर्ज के जाल में फंसता जा रहा है। एक ताजा अध्ययन के अनुसार, राज्य के किसानों पर बैंकों का लगभग 1.04 लाख करोड़ रुपये और साहूकारों का लगभग 20,000 करोड़ रुपये बकाया है

अनुवाद: प्रभात मिलिंद। साभार: ruralindiaonline.org

हिन्दुओं के सामने दो रास्ते

राजमोहन गांधी अपनी नई किताब में एक नैतिक पड़ताल का आग्रह करते हैं

बहुत पहले, अपनी किताब 'एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ' में गांधीजी ने 1894 की एक घटना का जिक्र किया है। तब वह दक्षिण अफ्रीका के डरबन में वकील थे। उम्र 24 साल। अपने गोरे मालिक से बुरी तरह पिटने के बाद, बालासुंदरम नाम के एक तमिल बोलने वाले गिरमिटिया मजदूर ने युवा गांधीजी से मदद मांगी। गांधीजी बालासुंदरम को दूसरे मालिक के पास भिजवाने में कामयाब रहे। किताब में इस वाकये का जिक्र करने के बाद गांधीजी ने लिखाः

'यह बात मेरे लिए हमेशा पहेली रही है कि इंसान अपने ही जैसे दूसरे इंसानों को अपमानित करके खुद को सम्मानित कैसे महसूस कर सकता है।'

यह आज के भारत में सच्चाई है कि मुखर हिन्दुओं की एक खासी बड़ी तादाद असहाय मुसलमानों के अपमान से खुद को कुछ समय के लिए उत्साहित और ऊर्जावान महसूस करती है। लेकिन, ऐसे हिन्दुओं की संख्या उनसे कहीं ज्यादा है जो इससे शर्मिंदगी महसूस करते हैं। फिर भी, हममें से ज्यादातर लोग चुप ही रहते हैं, क्योंकि आवाज उठाने पर मुसीबत मोल लेनी पड़ सकती है।

इसलिए, हिन्दुओं के पास करने को एक काम है। कमजोर या खतरे में पड़े लोगों की मदद के लिए आगे न आना, ऐसा कोई मूल्य नहीं है जिसे हिन्दुओं को कभी भी अहमियत देना सिखाया गया हो।

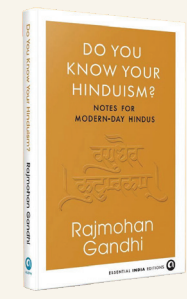

डू यू नो योर हिन्दुइज्मः नोट्स फॉर मॉडर्न डे हिन्दूज

लेखक राजमोहन गांधी
प्रकाशक एलेफ
कीमत 499 रुपये (हार्डकवर)

> असली सवाल यह है कि हमारा मन कहां भटकता है। हम अपने कल्पित अतीत की गहराइयों में उतरकर, वहां की कथित महिमा का आनंद ले सकते हैं। या फिर, यह देखें कि क्या हम उनकी पीड़ा को कम कर सकते हैं

28 नवंबर 2023 की रात, पूरे भारत ने राहत की सांस ली, जब उत्तराखंड की एक सुरंग में फंसे 41 लोग, सत्रह दिनों के लंबे इंतजार और अनिश्चितता के बाद, एक-एक करके जिंदा बाहर निकले।

उन बारह मेहनतकशों के नाम क्या थे, जिन्होंने विशाल मशीनों के फेल हो जाने के बाद, अपने हाथों, उंगलियों और नाखूनों से वह सुराख खोदा था, जिससे होकर वे फंसे लोग बाहर निकल पाए? मोनू, नसीर, अंकुर, जतिन, सौरभ, फिरोज, मुन्ना कुरैशी, राशिद, इरशाद, नसीम, वकील हसन और देवेंद्र। उनमें से कुछ हिन्दू थे, कुछ मुसलमान- सब खुदाई करने वाले और मजदूर। वे जिंदगी की अनिश्चितता के धागे से एक-दूसरे से जुड़े थे, साथ ही अपने हिन्दू मूल्यों, मुस्लिम मूल्यों और 'इंसानियत' के मूल्यों से भी।

शायद असली सवाल यह है कि हमारा मन कहां भटकता है। हम अपने कल्पित अतीत की गहराइयों में उतरकर, वहां की कथित महिमा का आनंद ले सकते हैं। या फिर, हम अपने देशवासियों- विभिन्न जाति और पंथ के अपने पड़ोसियों- के जीवन में सीधे प्रवेश करें और यह देखें कि क्या हम उनकी पीड़ा को कम कर सकते हैं।

इन दोनों ही अभ्यासों को हम 'हिन्दू धर्म' का नाम देते प्रतीत होते हैं। काश, हम उस कल्याणकारी मार्ग को ही चुनें। ■

Nehru centre

नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम

वेस्टर्न एक्सप्रेसवे पर मुंबई के हृदयस्थल में, बीकेसी से सटे, एयरपोर्ट के पास

इन सबके लिए सर्वोत्तमः
- कॉरपोरेट/एचआर मीटिंग, सेमिनार या ट्रेनिंग सेशंस
- व्याख्यान
- बुक लॉन्च/ बुक रीडिंग
- पैनल डिस्कशन
- साहित्यिक/सांस्कृतिक कार्यक्रम

ऑडिटोरियम उपलब्ध है
-पूरा दिन सुबह 10 बजे से शाम 8 बजे
-आधा दिन सुबह 10 बजे से दोपहर 2 बजे या शाम 4 बजे से शाम 8 बजे

बुकिंग के लिए कृपया संपर्क करें: +91 22-26470102, 8482925258
या हमें लिखें: contact@nehrucentre.com
नेहरू सेंटर ऑडिटोरियम, दूसरा फ्लोर, एजेएल हाउस, 608/1ए, प्लॉट नं. 2, एस. नं. 341, पीएफ ऑफिस के पास, बांद्रा, मुंबई- 400051